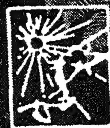
अनन्त कुमार पाषाण की कहानियाँ

नहीं, नहीं !



जीवन प्रभात प्रकाशन

नहीं ! नहीं !

(कहानी संग्रह)

अनन्त कुमार पाषाण



जीवन प्रभात प्रकाशन

बम्बई – 400063

ISBN 81-85564-12-4

प्रकाशक :
जीवन प्रभात प्रकाशन,
बम्बई-400 063.
फोन : 8366587

1996

मूल्य : 90 रुपये

मुद्रक :
जीवन प्रभात प्रेस,
221, गुरु गोविंदसिंह इंडस्ट्रियल इस्टेट,
गोरेगाँव-पूर्व, बम्बई-400 063.
फोन : 8746929

NAHIN NAHIN

Stories by Anant kumar Pashan

भेंडी बाज़ार घराने के
संस्थापक
उस्ताद अमान अली खाँ साहब
के
पट्ट शिष्य
पं. रमेश नाडकर्णी
व
उनकी प्रिय शिष्या
सौ. मीनाक्षी मुखर्जी
(छोटी दीदी)
को
अत्यन्त स्नेह पूर्वक
— **पाषाण**

दो बातें

श्रेय व प्रेय के बीच चुनाव की ऊहापोह मेरे समस्त साहित्य में सर्वत्र है।

तथाकथित आधुनिक भारतीय लेखक स्त्री और पुरुष के सम्बन्ध में पश्चिम व फ्रायड से बुरी तरह प्रभावित हैं। पहले भी सेक्स को उपयोगिता और व्यवहार की दृष्टि से देखने में वात्स्यायन का कामसूत्र किसी से पीछे नहीं। इन सब लोगों से अलग वैष्णवों ने शुद्ध अदैहिक प्रेम की परम्परा डाली, जो वाल्मीकि में भी है और बहुत ज़्यादा पढ़े-लिखे लोगों को, विशेषतः मार्क्सवादियों को वह स्वीकार नहीं है।

स्त्री और पुरुष दोनों ही मनुष्य हैं। एक दूसरे के व्यक्तित्व को, सम्पूर्ण व्यक्तित्व को प्यार करने पर, शरीर का उसमें शामिल हो जाना स्वाभाविक है। मगर प्रेम को निस्वार्थ समर्पण की रोशनी में देखना और मिल-जुलकर सन्तान उत्पन्न करने की प्रक्रिया समझना निश्चय ही दो बातें हैं। यशपाल की एक कहानी में तो नायक नायिका से यहां तक कहता है कि "मैं आपको इतना ही पसन्द हूं तो मेरा जैसा ही दूसरा व्यक्ति निर्माण करने में आप मेरी मदद क्यों नहीं करतीं?"

सहजिया सम्प्रदाय जैसे कुछ प्रेम-खोजी सम्प्रदायों ने प्रेम को आत्मविस्मृति के उस क्षण तक पहुंचा दिया, जिसमें नायिका कह सकती है - "जब मैंने तुमसे प्रेम किया था, तब तुम पुरुष थे और मैं स्त्री, अब मैं भूल गयी कि कौन पुरुष है और कौन स्त्री।"

इंग्लैण्ड में स्पेन्सर आदि ऐसे ही अदैहिक प्रेम के महान कवि हैं। पश्चिम का सबसे महान कवि दान्ते इस अदैहिक प्रेम का सबसे बड़ा कवि है और न केवल वह सर्वमान्य है, मगर टी. एस. एलियट जैसे महाकवि उसकी वन्दना करते हैं।

यह दोनों ही रुख मेरे साहित्य में हैं। मेरा अनुभव दान्ते व वैष्णवों के अधिक निकट है। नारी को मैंने बांधवी ही अधिक जाना है। महाकवि कालिदास ने रघुवंश के अज-विलाप में अज द्वारा पत्नी को सखी, शिष्या, प्रिया कहा है।

चण्डिदास ने प्रिया राममणि को गुरु कहकर उसके वरद हस्त के आशीर्वाद की मांग की है।

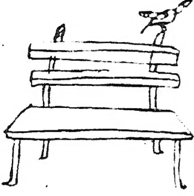
मेरे समस्त साहित्य को समझने, जिनमें यह कहानियां भी हैं, शायद इन बातों से कुछ सहायता मिले।

चंदन निवास, एम. वी. रोड,
अंधेरी (पूर्व), बम्बई - 400 069.

– अनन्त कुमार पाषाण

अनुक्रम

दुःख पाप है



देहरादून एक्सप्रेस से कोई काम-काजी आदमी कभी भी सफ़र करना पसन्द नहीं करता, यद्यपि उस रेल पर बम्बई से आरक्षण मिलने में बहुत कम कठिनाई होती है। नाम एक्सप्रेस ज़रूर है, पर छोटे-से-छोटे स्टेशनों पर लम्बे-से-लम्बे समय तक यह गाड़ी ठहरती है। रेल के भ्रष्टाचार और छोटे-छोटे कर्मचारियों के ज़्यादा-से-ज़्यादा रुपये ऐंठने की बात अनुभव करने की चीज़ है। मैं छतरपुर के दीवान के पास महू के एक फ़ौजी अफ़सर की चिट्ठी लेकर जा रहा था। यह चिट्ठी मुझे बम्बई में दी गयी थी और महू के अफ़सर को उस चिट्ठी का जवाब चार दिन के अन्दर चाहिये था।

अपने बारे में बस यही कह सकता हूँ कि समय 1962 का था और दिल्ली के फ़ौजी क्वार्टर्स में मैं एक विश्वसनीय कारिंदा समझा जाता था। सीधे शब्दों में समझ लीजिये कि फ़ौजी विभाग का एक क्लार्क था, जिसको यह गौरव प्राप्त था कि वह सबसे ज़रूरी चिट्ठियां इधर-से-उधर ले जाये। छतरपुर के पेंशनयाफ़्ता पुराने दीवान को एक बात की सफ़ाई के लिए फ़ौरन दिल्ली बुलाया गया था।

छतरपुर स्टेशन जब आया तो शाम हो गयी थी। बारिश ज़ोरों की पड़ रही थी और वहां के छोटे-छोटे चिराग़ बिलकुल ही मन्द लग रहे थे। ऐसा लग रहा था कि रहस्य-रोमांच की हम एक फिल्म देख रहे हैं। मैं उतरा और उसी दिन दीवान साहब से मिलकर और उनको चिट्ठी देकर अगले ही दिन देहरादून जाने को तैयार हो गया।

इस चिट्ठी को देने के बाद मुझे पन्द्रह दिन की छुट्टी मिली थी, जो मैं देहरादून में बिताना चाहता था।

पानी बरसता ही रहा था। रात-भर ज़ोरों से बरसा था और दीवान साहब के बहुत आग्रह के बावजूद मैं उनके अतिथि-गृह में केवल एक रात को रहा था। सवेरे दस बजे ही एक आस्टिन गाड़ी मुझे स्टेशन पर छोड़ गयी थी। स्टेशन मास्टर की कृपा से शाम तक का समय कट गया था।

अधिकतर जैसा होता है, रेल तीन घंटे के लगभग लेट थी। तेज़ बारिश और धुंधलाता अंधेरा। मालूम हुआ कि स्टेशन मास्टर साहब की लड़की भी जा रही है। रेल आने के लगभग आध घंटे पहले ही वह आ गयी और उनके आफिस में हमारा परिचय भी हो गया। लड़की, विन्ध्या साँवली थी और क़द में मुझसे कुछ ज़्यादा

ही लम्बी होगी। देहरादून में राजपुर रोड पर माता आनन्दमयी के दर्शन करके हरिद्वार गंगा-स्नान को उतर कर सहारनपुर के किसी स्कूल में पढ़ाने की अपनी नयी नौकरी शुरू करनेवाली थी। हंसने-बोलने से वह मुझे मिलनसार लगी।

ट्रेन लगभग सात बजे आयी और प्रथम श्रेणी के एक दो-सीटोंवाले डिब्बे में हम दोनों को बिठा दिया गया। रेल पर चढ़ने में हमारे कपड़े अच्छी तरह भीग गये थे। जब रेल फिर चल पड़ी, तो मैंने महसूस किया कि उतने गीले कपड़ों में सोना नामुमकिन है। थोड़ी देर इसी उलझन में रहा कि विन्ध्या ने कहा – "वेद साहब, आप ज़रा दूसरी तरफ़ मुंह फेर लें तो मैं सूखे कपड़े पहिन लूँ। बहुत ही भीग गये हैं कपड़े!" मैंने मुंह फेर लिया और लगभग पांच मिनट के बाद उसने कहा – "धन्यवाद! अब आप इधर देख सकते हैं!" मैंने देखा तो वह एक सफेद साड़ी में खड़ी थी। ऊपर से नीचे तक उसे देखकर जैसे मुझे लगा कि वह गर्भवती है। मगर मैंने इसे अपनी कल्पना समझा। फिर उसी के अनुकरण पर मैंने कपड़े बदले और हम आमने-सामने की सीटों पर बैठ गये। कारकुनी करते-करते मुझे पांच साल हो गये थे और स्वभाव भी किसी हद तक सूखा बनने लगा था। सोच रहा था कि एक रात, और एक दिन और अगली रात के पहले पहर तक सफ़र कैसे बीतेगा! यह मेरे चरित्र की बहुत बड़ी कमज़ोरी है। किसी भी अजनबी के साथ बहुत समय तक अकेला रहने पर बात न करना मुझे सौजन्य की बहुत बड़ी कमी लगती है।

तेज़ बारिश और अन्धेरे में रेल जैसे बहुत तैश में भागी जा रही थी। बाहर देखने की संभावना नहीं थी और शीशे चढ़े हुए थे। मैं चुपचाप पंखे को देख रहा था।

एकाएक वह बोली – "आप बम्बई से आ रहे हैं।" मेरे हां कहने पर उसने पूछा – "क्या बम्बई में ही रहते हैं?"

मैंने कहा – "नहीं! नाम शायद आपने न सुना हो। मैं बम्बई के पास खड़कवासला नाम की जगह में रहता हूं। वहां युद्ध-शिक्षा की एक बड़ी अकादमी है और एक फ़ौजी शस्त्रागार है।"

ऐसा लगा कि जैसे उसे बहुत ज़ोर का धक्का लगा, जैसे खड़कवासला नाम सुनकर उसे आश्चर्य हुआ और शायद दुःख हुआ।

थोड़ी देर चुप रहकर वह बोली – "एक खड़कवासला पूना के पास भी है।"

मुझे उसकी जानकारी पर विस्मय हुआ। "जी, मैं उसी खड़कवासला की बात कर रहा हूँ!"

"बाबूजी तो कह रहे थे कि आप दिल्ली के फ़ौजी दफ़्तर में काम करते हैं।"

"जी करता हूँ, सही बात है। खड़कवासला में मैं डिफ़ेन्स मिनिस्ट्री के किसी

काम से इसलिए तैनात किया गया हूँ कि पड़ोसी देश के कुछ छुपे हुए भेदिये भारत में आकर छुपे हैं और जिन लोगों का पता लगाने का ज़िम्मा मुझे दिया गया है, वह खड़कवासला से पास पड़ते हैं।''

''मगर फिर छतरपुर क्यों आना पड़ा आपको?''

''जी, दीवान साहब को एक ज़रूरी ख़त देना था – छुट्टी पर जाने के पहले। असल में मैं कल से पन्द्रह दिनों की छुट्टी पर हूँ।''

वह कुछ खुश हुई – ''छुट्टी में आप देहरादून क्यों जा रहे हैं?''

''जी, मैं देहरादून नहीं हरिद्वार जा रहा हूँ। वहां मेरे गुरु अकेले गंगा-तट पर रहते हैं।''

जल्दी से वह बोली – ''आपके गुरु? क्या आपने उनसे मंत्र लिया है?''

हंसकर मैं बोला – ''वैसे गुरु नहीं। वह बी. एस- सी. में मुझे पढ़ाते थे। किन्हीं कारणों से उन्होंने संन्यास लिया है। पिता की मृत्यु के बाद उन्होंने मुझे बहुत सम्हाला। बल्कि लगने भी नहीं दिया कि मेरा कोई नहीं है। खर्चा ही बर्दाश्त नहीं किया, नौकरी भी उन्हीं ने लगवायी!''

''क्या उम्र है उनकी!''

''उम्र तो चालीस से ज़्यादा न होगी!''

''इतनी कम उम्र में उन्होंने संन्यास ले लिया! क्या बहुत वैरागी क़िस्म के आदमी हैं?''

''इसका तो कुछ भी अन्दाज़ मुझे नहीं है, गो मैं उनके जितना निकट हूं, उतना शायद ही कोई हो!''

''कमाल है!'' विन्ध्या ने कहा और चुप हो गयी। फिर थोड़ी देर में बोली– ''अगर आप बुरा न मानें तो क्या मैं पूछ सकती हूँ कि छुट्टियां बिताने आप उनके पास जा रहे हैं या किसी और कारण से?''

इस सवाल का जवाब देना मुश्किल काम था। मेरे गुरु ने क्यों संन्यास ले लिया यह शायद स्वयं भी न जानते थे। दाल-रोटी के पैसे उनके पास थे और धर्म पर या अध्यात्म पर कभी बात न करते थे। फिर भी सुख-संचारक कं० मथुरा की एजेंसी ले रखी थी और गो नुक्सान नहीं उठाते थे, पर नफ़ा भी नहीं कमाते थे। हरिद्वार आनेवाले यात्रियों की सेवा में दवाओं का इस्तेमाल होता था। हमेशा आनेवाले यात्री उन्हें इतना चाहते थे कि खाना भी अपने ही साथ खिलाते थे।

मैंने कहा – ''मुझे लगता है मनुष्य की सेवा में उन्हें बहुत आनन्द मिलता है। सुख-संचारक कं० मथुरा की दवाइयों के एजेन्ट हैं। मुफ़्त दवाएं बांटते हैं।''

इस तरह हम बेतकल्लुफ़ होते गये। मालूम नहीं कैसे और क्यों दो अजनबी व्यक्ति इतने पास आ जाते हैं। लगता था कि जैसे बारिश की वह रात उस तेज़ भागती रेल में बात करके ही कट जायेगी।

मां आनन्दमयी के पास वह क्यों जा रही थी? इस प्रश्न के बाद जैसे मन के दरवाज़ों पर पुराने ज़ंग-लगे तालों को खोलना बहुत कठिन हो गया। मगर संसार का एक रहस्य यह है कि दुःख से वज़नी हृदय तब तक हल्का नहीं होता, जब तक कि किसी पर अपना रहस्य न प्रकट कर दे।

उसके पिता को भी पता नहीं था कि वह हरिद्वार माता आनन्दमयी के दर्शन करने नहीं जा रही थी। वह सहारनपुर में अपने एक डाक्टर मित्र आनन्दमोहन के यहां जा रही थी, गो टिकट उसने हरिद्वार का लिया था। क्यों?

बहुत मुश्किल से वह बोली – "आप मुझसे नफ़रत करने लगेंगे!" बहुत आश्वासन के बाद पता चला कि वह सहारनपुर में गर्भपात करवा कर तब तक वहीं रहेगी, जब तक स्वस्थ न हो जाये। मैंने किसी भाव के बिना यह सुन लिया। चुनौती भरे स्वर में वह बोली – "पूछिये और क्या पूछना है। शायद हम जीवन में फिर कभी न मिलें।"

थोड़ी देर चुप रह कर मैंने उसका हाथ हाथ में लिया और बोला – "जीवन लम्बी चीज़ है। किसने देखा है? गर्भ के बच्चे के पिता को यह हत्या स्वीकार है?"

"स्वीकार की बात ही नहीं उठती। वह शादी-शुदा है और उसके तीन बच्चे भी हैं। ऐसी स्थिति में यदि सन्तान हुई भी तो उसका जीवन मरे से बदतर होगा।"

मैंने कहा – "मैं आपका मित्र हूँ। सज्जनों में सात क़दम चलकर ही मैत्री हो जाती है। नफ़रत करने की बात आपने कैसे सोच ली, कह नहीं सकता। यद्यपि मैं आपकी मदद करने पर मज़बूर नहीं हूँ, पर यदि इस अवसर पर मैंने आपको अकेला सहारनपुर उतरने दिया, तो जीवन-भर मैं अपने को कायर समझूँगा और फिर शायद सुखी होना तो मेरे भाग्य में ही नहीं है - मगर थोड़ा-बहुत जो चैन मेरे लिए संभव है वह भी हमेशा के लिए नष्ट हो जायेगा। मालूम नहीं आपका स्त्री-स्वातंत्र्य में विश्वास है कि नहीं किन्तु मेरा विश्वास मनुष्य के स्वातंत्र्य में है। ऐसी स्थिति में आपको छोड़ जाना भीषण कायरता होगी।"

वह सिसकियाँ लेते हुए बोली – "भूल मेरी ही है। मुझे आपको बताना ही नहीं चाहिये था!"

कुछ रुककर मैं बोला – "भगवान शायद एक क़ीमती भारतीय की जान को बचाना चाहते हैं। अगर आप मुझे अपना समझें तो मैं पूछना चाहूंगा कि बच्चे

के पिता से आपका सम्बन्ध कैसे हुआ ?''

''वह खड़कवासला का एक शादीशुदा लड़का था, जो वहां फ़ौजी ट्रेनिंग ले रहा था। किसी कारण से वह अपनी बीवी के बहुत ही ख़िलाफ़ था। रिश्तेदार होने की वजह से हमारे राजा साहब के यहां आकर ठहरा था। हमारे यहां आता-जाता था और मैं भी कभी-कभी उसके साथ शतरंज खेलने महल में जाती थी। ग़ज़ब का गाता था। मुझे गाना बहुत पसन्द है। मैं उससे कुछ भजन सीखने लगी।''

''तो उसने आपको धोखा क्यों दिया। अब वह कहां है ?''

''धोखे का तो सवाल ही नहीं। राजा साहब का रिश्तेदार है और उसका विवाह टीकमगढ़ के राजघराने की किसी लड़की से कभी का हो चुका था। ग़लती सरासर मेरी ही है। वह तो बहुत ही मासूम लड़का था। अगर मैं ही आग्रह न करती, तो हमारे शरीर कभी इतने पास न आते। उसे तो यह मालूम भी नहीं होगा कि उसकी सन्तान मेरे पेट में है।''

''क्यों ? आपने उसे लिखा नहीं ?''

''वह तो कश्मीर की हद पर कहीं देश की रक्षा को भयंकर बर्फ़ में लड़ रहा होगा। उसका पता भी मेरे पास नहीं है। दो पत्र आर्मी हेड क्वार्टर के पते पर उसे भेजे, पर उत्तर न आया।''

मेरे सच्चे मैत्री भाव से वह प्रभावित हुई। तय यह हुआ कि सहारनपुर के अपने मित्र के पास जाने के पहिले वह मेरे गुरु से हरिद्वार मेरे साथ आकर मिले। वह प्रायः हर समस्या को सुलझा सकते हैं।

जाड़े की शाम। गंगा का पावन प्रवाह बड़ा तेज़ था। मां की आरती हो चुकी थी। हम दोनों गुरुजी के सामने बैठे चने खा रहे थे। गुरुजी ने सब सुनकर कुछ परेशानी न ज़ाहिर की थी।

थोड़ी देर बाद बोले – ''हॉलकेन का एक प्रसिद्ध उपन्यास है– 'द वूमन दाउ गिवेस्ट मी'। बहुत प्रसिद्ध है। उसमें भी एक प्रेमी अपनी प्रेमिका का समस्त जीवन अनचाहे नष्ट कर देता है। सवाल सुख का है। जब अन्ततः किसी ने दुःख ही पाया तो वह कृत्य अत्याचार ही है। जब मैं अपने विचार में दृढ़ हुआ, कुछ समझने लगा तो पाया कि यूरोप का भोगवाद मुझे स्वीकार नहीं। मगर संक्षेप में, मैं भी एक लड़की के, जो बहुत दिलेर अंगरेजी वातावरण में पली थी, सम्मोहन में अत्याचार कर बैठा। स्त्री के भीतर मातृत्व पाने की शक्ति अदम्य है। उस लड़की से शादी नहीं कर सकता था, क्योंकि वह छोटी थी और पैसेवाले की लड़की थी। उसके परिवार वाले कभी स्वीकार न करते। इसलिए मुझे लगा कि अब शेष जीवन गंगा के तट पर बिताऊं! यहाँ चार वर्ष से हूँ और माँ ने जो कुछ बताया है, मैंने समझा है। सही या गलत मैं प्रायश्चित करना चाहता हूँ।''

डरते-डरते मैंने पूछा – ''सर, वह लड़की अब कहां है?''

''मुझे मालूम नहीं। जानना भी नहीं चाहता!''

''आप उससे प्रेम नहीं करते थे?''

''प्रेम? प्रेम तो ऐसा करता था कि प्राण निकल जायें। यदि वह दो दिन की छुट्टियों में भी कभी शहर से बाहर जाती थी, तो वक्त काटना मुश्किल होता था।''

''तो फिर प्रायश्चित क्यों करना चाहते हैं?'' मैंने फिर पूछा। ''मानता हूँ कि प्रेम एक-दूसरे को सुख देने की प्रक्रिया है। ऐसा सुख जो दूसरा न दे सके। पाप और पुण्य कुछ नहीं है। दुःख पाप है। आनन्द ईश्वर की अभिव्यक्ति है। किन्तु मनुष्य जाति के विकास में स्त्री वही भूमिका अदा करती है बिलकुल अनजाने – जो पशु जगत में सभी मादाएं करती हैं। वास्तविकता यह है कि शेरनी आधा-आधा घंटे में शेर को कामोद्यत करती है। मगर गर्भ रह जाते ही शेर को पास भी नहीं आने देती है। गुस्से में गुर्राती है। प्रेम मनुष्य को यदि सबसे बड़ी, सबसे सन्तोषजनक मैत्री न दे सके तो क्या वह प्रेम है! मगर स्त्री मनुष्य जाति के विकास के लिए स्वयं भी शिकार होती है। एक ऐसे पुरुष को चुनती है, जिसके द्वारा पैदा पुत्र विकास की चाहे जितनी भी छोटी कड़ी बन सके।''

गंगा मइया में बहते-बहते दिये दूर तक चले गये थे। आरती के घंटे गूँज रहे थे।

निर्निमेष दृष्टि से विन्ध्या को देखकर बोले – ''दून स्कूल में मेरा एक शिष्य टीचर है। तुम्हारी डिलीवरी वहीं उसी के घर में होगी। तुम सहारनपुर का स्कूल जॉयन कर लो। डिलीवरी के समय हम देहरादून में होंगे। फिर उसे देहरादून में छोड़कर तुम वापस पढ़ाने चली जाना!''

''उसे देखेगा कौन?'' विन्ध्या ने पूछा।

''मेरे शिष्य की पत्नी, जिसे डाक्टरों की राय में कभी बच्चा न होगा। वह उसे पालेगी। बहुत खुश होगी। मगर जब वह बच्चा बड़ा हो जायेगा, तो शायद हमारी लड़ाई हो जाये।''

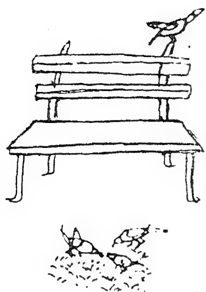
''वह क्यों?'' मैंने उत्सुकता से पूछा।

''बताऊंगा! और विन्ध्या, एक चीज़ तुमसे मांगता हूं। दोगी?''

विन्ध्या ने सिर नीचा किये-किये हामी भरी।

''तो सुनो। अगर वह लड़का हुआ तो शिष्य के ही पास रहने दूँगा। अगर लड़की हुई तो मैं ले लूँगा। मुझे एक ऐसी लड़की की ज़रूरत होगी, जो बुढ़ापे में मेरी देख-भाल करे। तुम लेने दोगी ना मुझे?''

विन्ध्या रोते-रोते हंस पड़ी।



नहीं! नहीं!!

शायद ही कोई विश्वास करे कि एक तोता दूसरे तोते का पिंजरा बाहर से खोल सकता है। इसके विरुद्ध यह तर्क दिया जा सकता है कि जब तोता अनेक चिट्ठियों में से एक चिट्ठी निकाल सकता है, तो पिंजरे का दरवाज़ा खोलना उससे अधिक मुश्किल तो नहीं है। उस तोते को जो चिट्ठी निकालता है, यह सब मेहनत से सिखाया जाता है। सीखे हुए जानवर क्या नहीं कर सकते ?

मगर यहाँ भी मनुष्य के अहंकार ने सत्य को धुंधलाया हुआ है। यह मान कर ही चला जाता है कि आदमी जो कुछ सिखाता है, वह जन्मजात गुण हो ही नहीं सकता। याने पैदाइशी विद्या अविश्वसनीय है। लोग भूल जाते हैं कि सीख कर भी जो नहीं किया जा सकता, वह आठ-दस बरस के लड़के खेल-खेल में कर डालते हैं। स्वयं हमारे ही युग में शकुन्तलादेवी हैं, जो करोड़ों की संख्या का जोड़-गुना हंसते-हंसते खेल-खेल में कर डालती हैं - बहुत ही छोटी उम्र से। मगर वह तो आदमी हैं।

कमाल है ! मनुष्य अपनी श्रेष्ठता के बारे में कितना आश्वस्त है। पुलिस बड़े-बड़े खूनियों का, अपराधियों का पता कुत्तों की मदद से लगाती है। भूकंप में जानवरों की प्रतिक्रिया से भूकंप का पता दस मिनट पहिले ही लग जाता है। मकान गिरने के 20 मिनट पहिले ही साँप अपने बिलों के बाहर निकल आते हैं। ज़ंजीर से बंधे होने पर ज़ोर-ज़ोर से भूंक कर कुत्ते जंजीर तोड़ने में अपनी जान लड़ा देते हैं। लड़ाइयों के किस्सों में घोड़े जख़्मी घुड़सवारों को मंज़िल पर पहुंचाने के बाद या खतरे के बाहर ले जाने के बाद ही मरते हैं। चूहे डूबनेवाले जहाज़ों को जहाज़ डूबने के पहिले ही छोड़ देते हैं।

तर्क या बुद्धि की कुछ हदें हैं और अपने को बहुत समझदार समझनेवाले कहते हैं कि ज्यों-ज्यों समय गुज़रेगा – इन धुंधले इलाक़ों पर विज्ञान रोशनी डालेगा। जिस विश्व में कुछ तारों की रोशनी उनके जलकर समाप्त होने के करोड़ों साल बाद पृथ्वी पर पहुंचती है, हम मसखरों की तरह बात करते हैं।

चंद्रशेखर फिल्मों में चौदह साल से असिसटेंट का काम कर रहा था, मगर एक भी पिक्चर डायरेक्ट करने का मौक़ा उसे नहीं मिला था। उसकी आंखों में कुछ दोष था और दस साल में उसका अंधा हो जाना, डाक्टरों के अनुसार, निश्चित था। मगर इस दोष से उसकी दिग्दर्शन करने की प्रतिभा पर क्या असर पड़ता है, यह स्पष्ट नहीं था। पहले वह शांताराम के यहां छह साल तक सहकारी रहा था, किन्तु

शान्ताराम के साथ संभावनाएं लगभग नहीं थीं। उन दिनों एक प्रसिद्ध निर्माता को दिग्दर्शक के रूप में प्रसिद्ध होने का शौक़ चर्राया, तो उसने 300 रुपये ज़्यादा देकर चंद्रशेखर को बुला लिया।

नयी पिक्चर के लिए घोषणा कर दी गयी – "प्रसिद्ध निर्माता द्वारा निर्मित स्वयं उन्हीं के दिग्दर्शन में बना पहिला चलचित्र।" अपनी ही कम्पनी से उन्होंने 1950 में एक लाख रुपया लिया और फिल्म बनने लगी। उसके वितरण के अधिकार भी दुगुनी चौगुनी क़ीमत पर बिक गये।

चंद्रशेखर का लाइटिंग का ज्ञान निरुपम था। आउटडोर या इनडोर किसी भी सीन में लाइट वगैरह सब जमा कर वह सेठजी, याने निर्माता का एक ओ. के. लेकर, शॉट ले लेता। इस तरह प्रसिद्ध जादूगर निर्माता दिग्दर्शक बन रहे थे और खार में एक कमरे में रहनेवाला आंखों की घटती हुई रोशनी से परेशान चंद्रशेखर चित्र बना रहा था। एक 25-30 वर्ष की स्त्री हरीतिमा जो फ़िल्मों में काम पाने की कोशिश कर रही थी, उसके साथ रहने लगी थी। जिस छोकरे के साथ भागकर वह जोधपुर से आयी थी, उसने उसे धोखा दे दिया था। चंद्रशेखर जब उसके सम्पर्क में आया, तो उसने उसे उस छोकरे के बारे में सब बताया, क्योंकि प्रायः सभी उसे जानते थे। उसके दो महीने बाद ग्रांट रोड स्टेशन के पीछे के एक हॉटेल में उस छोकरे के साथ रहनेवाली हरीतिमा खार में चंद्रशेखर की शरण में आ गयी और चंद्रशेखर की ट्रक से अपनी टूटी गाड़ी जोड़कर कारखाने में ठीक होने को पहुंचायी जाने की प्रतीक्षा करने लगी।

चिंचवड़ के एक ट्रक-ड्रायवर का लड़का चंद्रशेखर अब संसार में निपट अकेला था। खार में एक तीन-मंजिल बिल्डिंग की दूसरी मंजिल पर उसका एक कमरा था। बाथरूम आदि अलग। उसके जीवन के आकाश में अंधे होने का ख़तरा स्पष्ट हो चला था और वह कभी-कभी अपने को असहाय महसूस करने लगा था। सेठजी तनख़्वाह भी दो-तीन महीने में एक बार ही देते थे।

जिस दिन सुबह अपना सामान लेकर हरीतिमा आयी, चंद्रशेखर का ऑफ़ डे था यानी शूटिंग नहीं थी। हरीतिमा को वह हरी कहने लगा था और उसने दुर्लभ परिहास के मूड में कहा –"हरी, हरी इन (जल्दी अन्दर आओ।) हरि ने हरी को भेजा है!"

न जाने कहां से एक बहुत बड़ा तोता उस बड़ी-सी खिड़की पर आकर बैठ गया और बोला – "नहीं! नहीं!!"

चंद्रशेखर हंसने लगा – "मालूम नहीं किसका तोता उड़ भागा है!"

तोते ने फिर कहा – "नहीं ! नहीं !!" हरीतिमा घबरा गयी। चंद्रशेखर ने उसे पकड़ने की कोशिश की तो वह "नहीं ! नहीं !" चिल्लाता हुआ भाग गया।

हरीतिमा वहां रहने लगी और छोटे-मोटे पार्ट करके आमदनी की वृद्धि भी करने लगी। सेठजी ने एक दिन हंस कर चंद्रशेखर से पूछा – "यह छोकरी क्या तुम्हारे साथ रहती है !" चंद्रशेखर ने प्रायः गर्व से हामी भरी तो सेठजी हंसकर बोले– "हीरोइन बनायेगा इसे ?" चंद्रशेखर शरमा कर बोला – "मैं इतने सालों से डायरेक्टर नहीं बन सका, तो इसे हीरोइन क्या बनाऊंगा। बिचारी एक छोकरे के साथ भाग कर बम्बई आयी है। बिरजू महाराज से डान्स सीखा है।"

वही तोता न जाने कहां से सेठजी के घर की खिड़की पर आकर बैठ गया और चिल्लाने लगा – "नहीं ! नहीं !!"

सब लोग हंसने लगे। कॅमेरामॅन सब्बरवाल ने कहा – "इस तोते को पकड़ना चाहिये।"

"नहीं ! नहीं !!" चिल्लाता हुआ तोता उड़ गया।

सॅट्स पर पन्द्रह-बीस दिन तक तोते का बहुत ज़िक्र रहा। सब्बरवाल बहुत शरीफ़ आदमी था। उसने अकेले में चंद्रशेखर को पास बुलाकर स्नेह से कहा – "लोग तुझ पर हंसते हैं। यह जो इल्लत तूने पाली है। और मालूम नहीं क्यों एक दूसरे से कहते हैं – यह वही इंडिया होटेलवाली छोकरी है ना रे ! बुरा फांसा है अंधे को ! सेठजी भी इस लड़की की वजह से ..... तेरे ख़िलाफ़ हो गये हैं !" चंद्रशेखर चुपचाप सुन लेता।

जब हरीतिमा किसी छोटे से सीन में कोई छोटा-सा रोल कर रही होती, तो न जाने अलग-अलग सॅटों से आकर लोग चंद्रशेखर के पास खड़े हो जाते और उसे कन्धे से धक्का मार कर भौंएं ऊपर करके हंसते और फिर कहते – "जवाब नहीं है रे ! हीरोइन बनेगी एक दिन !" जब सब्बरवाल उनको डाँटता और सॅट पर से भगा देता, तब कहीं जाकर चंद्रशेखर काम कर पाता।

मानना पड़ेगा कि चंद्रशेखर का जीवन अवश्य ही सुविधापूर्ण हो गया। कुछ बचत भी होने लगी। कमरा भी अधिक साफ़ रहने लगा। सुबह चाय के साथ गरम-गरम दोसा और रात के खाने के साथ उसे दही और पोदीने की चटनी मिलने लगी। बीच में हरीतिमा के आग्रह पर चंद्रशेखर ने सेठजी व उनकी पत्नी को खाने पर बुलाया। खाना खाकर सेठजी एकदम आश्चर्य-चकित हो गये - "बहुत बढ़िया खाना बनाती है तेरी हरी !" कहकर बहुत देर तक हरीतिमा की ओर देखकर बोले – "आँखें इतनी काली हैं हरी की। एक बार सब्बरवाल से कह कर इसका स्क्रीन टेस्ट करवा

ले! मैं बालूजा से बात करूंगा!'' झट सिर पर पल्ला रखकर हरीतिमा ने सेठजी के पांव छुए।

चंद्रशेखर उदास-सा बोला – ''मैं शायद अंधा हो जाऊँ। डाक्टर बर्वे कहते हैं कि यह संभव है। इसीलिए हरि ने हरी को भेज दिया।''

वही तोता न जाने कहां से आकर खिड़की पर बैठा और ज़ोर से बोला - ''नहीं! नहीं!!'' चंद्रशेखर ने जाकर उसे पकड़ लिया। लगता था जैसे वह पकड़ा जाने की प्रतीक्षा ही कर रहा था। उसने उसे अन्दर लाकर एक अमरूद दिया और मेज़ पर बिठा दिया। अमरूद की तरफ़ तो उसने देखा भी नहीं, पर मेज़ पर मज़े में बैठा रहा।

सेठजी बोले – ''मालूम नहीं किस बिचारे का है।'' तोता मुंह ऊपर करके ज़ोर से बोला – ''नहीं! नहीं!!''

हरीतिमा एक पीतल का बहुत ही सुन्दर पिंजरा उसके लिए लायी। कंजूस हरीतिमा ने 350 रुपये उस पिंजरे पर खर्च दिये। तोता खुद-ब-खुद उस पिंजरे में घुस गया, जैसे कि हमेशा से वहाँ उसी पिंजरे में रहा हो। चंद्रशेखर ने कहा – ''सेठजी, ठीक ही कहते थे। यह तोता पालतू है!'' पिंजरे के अन्दर से चिल्लाकर तोता बोला– ''नहीं! नहीं!!''

इस ''नहीं-नहीं'' से प्रेरित होकर चंद्रशेखर ने उसका नाम रख दिया – ''नो! नो!''

पिक्चर फ़ेल हो गयी। कमज़ोरी कहानी में थी और किसी की कोई भी सलाह मानने में जैसे सेठजी की हतक थी। कहानी–लेखक बहुत प्रसिद्ध था, मगर वह कहानी तो सेठजी ने इतनी बदली थी कि स्वयं लेखक भी उसे नहीं पहिचान सकता था। चंद्रशेखर यदि दबी ज़बान से सेठजी का विरोध करता था, तो सेठजी लगभग व्यंग्य से कहते – ''तू अपना काम कर ना यार! स्टोरी में टांग मत अड़ा।''

सो पिक्चर के दो दिन में उड़ जाने पर उन सब लोगों को थोड़ी खुशी कहीं हुई, जिनका अपमान सेठजी ने किया था। उसकी चार महीने की तनख़्वाह बाक़ी थी और जब पैसे डालनेवाले का छह लाख क़र्जा घोषित हुआ, तो सेठजी ने अपने कान्ट्रॅक्ट के एक लाख तो इलाहाबाद बँक में डाल दिये थे और कम्पनी के मातहतों को चार महीने के वेतन के बदले दो महीने का वेतन देने के बाद कम्पनी को दिवालिया घोषित कर दिया गया।

अंधापन शुरू होते ही चंद्रशेखर की आंखों का ऑपरेशन डा. बर्वे ने किया, पर आंखों को बचा न सके। अस्पताल में हरीतिमा उसके लिए खाना बनाकर लाती

रही और दवा वगैरह भी समय पर देती रही। उसकी इच्छा से तोते का पिंजरा भी उसके बिस्तर के पास रखा गया, मगर जनरल वॉर्ड में किसी पक्षी को रखने की इज़ाज़त न होने के कारण वापस ले जाया गया। हरीतिमा ने अपनी दो सोने की चूड़ियां और नाक की हीरे की लौंग बेचकर अस्पताल का बिल चुकाया और चंद्रशेखर को घर ले आयी।

अब न पैसा था, न आशा। फिर भी किसी तरह इधर-उधर से उधार मांगकर हरीतिमा काम चला रही थी।

चंद्रशेखर बहुत आस्था से आवाज़ देता था – "हरी! हरी!!"

तोते ने बोलना बन्द कर दिया। एक दिन रात को हरीतिमा नहीं लौटी। चंद्रशेखर ने बहुत प्यार से आवाज़ दी– "हरी!" कोई उत्तर नहीं आया। घबराकर चंद्रशेखर ज़ोर-ज़ोर से "हरी!" "हरी!" "हरी!" चिल्लाने लगा। हरी! हरी! केवल प्रतिध्वनि हुई - "हरि! हरि! हरि!"

दूसरे दिन सुबह तक हरीतिमा नहीं लौटी। रात को उठकर उस चिर-परिचित कमरे में चंद्रशेखर ने टटोल-टटोल कर पानी पिया और दो बार लघुशंका को गया।

सवेरे-सवेरे सब्बरवाल "शेखर!" "शेखर!" चिल्लाता अन्दर घुसा। चंद्रशेखर ने आवाज़ पहिचान कर पुकारा –"सब्बरवाल!" मगर सब्बरवाल ने उत्तर देने के बदले ज़ोर से कहा – "अरे, यह क्या! दूसरे तोते ने आकर 'नो' 'नो' के पिंजरे का दरवाज़ा खोल दिया! कमाल है! अरे, 'नो' 'नो' बाहर निकल आया!" लगा वह भागकर पिंजरे की तरफ़ बढ़ा।

चंद्रशेखर ने अधीरता से कहा – "सब्बरवाल! हरी का पता है?"

"मालूम नहीं, कहां चली गयी वह! कल मेरे घर आ कर उसने कहा कि घर में फूटी कौड़ी भी नहीं है। कैसे तो वह दवा-दारू करे, कहां से तो खाना लाये! कमरे का किराया! दूधवाले के दाम! वह उसी छोकरे के पास जा रही है, जिसके साथ वह आयी थी। मुझसे कहा कि तुम्हारा ज़िम्मा लूं। घबराओ नहीं चंद्रशेखर, मैं तुम्हें अपने घर ले जाकर रखूंगा।"

"मगर खर्चा कहां से निकलेगा और कब तक मैं तुम्हारे घर में पड़ा रहूंगा? क्या तुम्हारा घर इतना बड़ा है?"

सामने के पेड़ से तोते की बहुत तेज़ आवाज़ आयी – "नहीं! नहीं!!"

खजूर में अटके



जब हेड मास्टर हेमन्तकुमार ने जो बंगला के ऐंठू कवि प्रसिद्ध हैं, अपने लड़के नीहार की लव-मैरिज का पता पाया, तब तक हेमन्तकुमार की पत्नी और बहिन के अनुमोदन के बल पर बात लगभग तय हो चुकी थी और सेठ नरसीदास श्रीनाथजी का परिवार भी नीहार के पिता के पास बात करने आनेवाला था। हेमन्तकुमार एक ज़माने में जमनादास नाटक-मण्डली में शाम को काम करते थे, पर लोग कहते हैं कि कम्पनी का मालिक, वे अपने को ही समझते थे। एक दिन जमनादासजी बोले – "देखो, हेमन्त बाबू, यह कम्पनी मेरी है कि आपकी? इसमें पैसा मैंने लगाया है या आपने? रानी सती पर ड्रामा आप नहीं कर सकता, तो धीरज भाई करेगा। हमें कम्पनी को डुबाना नहीं है। आपका आयडिया बंगाली लोग के लिए ठीक है, मगर हम को तो प्रॉफ़िट मांगता है।" और भी न जाने क्या-क्या बोल कर जब सेठ जमनादास थक गये, तो हेमन्तकुमार ने एक वाक्य कहा – "पिछले महीने की पगार दे दीजिये और मैं आपकी कम्पनी छोड़ता हूँ!" "पगार तो अभी नहीं दे सकता!" "अच्छा, तो जब कड़की दूर हो जाये, तब घर पर भिजवा दीजियेगा। यदि कड़की ही रहे, तो मेरी पगार को मेरा डोनेशन समझकर रख लेना। नमस्ते!" कहकर हेमन्तकुमार घर आ गये।

इसीलिए जब-जब हेमन्तकुमार की बात होती, तो गीतकार सुरेन्द्र मिसरा कहते – "लड़का इसका होशियार है। बाप को भी बिज़नेस में लायेगा। नरसीदास जैसा शिकार पकड़ा है!"

और हेमन्तकुमार की बहिन जो विनोबाजी की शिष्या थीं और एक थैली में कपड़े लेकर ग्राम-सुधार करती फिरती थीं, प्रसन्न होकर बोलीं – "लड़की ऐसे चुनी जाती है!" इशारा हेमन्तकुमार की पत्नी की तरफ़ था, जो एक कम्यूनिस्ट पार्टी के सदस्य की लड़की थीं।

यहाँ तक कि जब हेमन्तकुमार के चाचा ने भी नीहार की पीठ थपथपायी और जोर-शोर से घोषणा की कि – "हेमन्त से एकदम उलटा है नीहार। एकदम प्रॅक्टिकल है!" तो हेमन्तकुमार ने समझ लिया कि जीवन-संध्या में उनकी कीमत गिरती जायेगी।

सो शादी हो गयी और "नरसीदास कम्पनी" की एक नयी शाखा खुली "नरसीदास नीहार कम्पनी!" हेमन्तकुमार से मिलने जमनादास आये और सुलह

के ढंग पर बोले – "आप अलग ढंग का आदमी है हेमन्त बाबू! पर आप जानते हैं कि आपके लिखे नाटक कम्पनी ने तीन साल तक किये तो आज दिवालिया है। बताइये, मेरी दो लड़कियां हैं, उनकी शादी करनी है और बुढ़ापे के लिए भी दाल-रोटी का इन्तज़ाम करना है। मैं इतना पैसेवाला नहीं हूं आपके समधी की तरह। मैं भी और कोई बिज़नेस करता तो आज करोड़पति होता। आपका लड़का धन्धे में है। बीवी अच्छा कमाती हैं। आप लगभग अकेले आदमी हैं। 'रानी सती' ड्रामा 'राजस्थान कल्चरल सोसायटी' करना चाहती है। तीन लाख रुपये देगी। फिर आप अपने वही कलात्मक ड्रामा कर सकते हैं।"

हेमन्तकुमार को पिघलता देख वह प्यार से बोला – "हेमन्त बाबू! आपका हमारा सम्बन्ध पिताजी के समय से है। पिताजी डा. श्यामा प्रसाद के भक्त थे। इसलिए, जब मरे घर में कुल तीन सौ रुपये थे। मैं भीख मांगना नहीं चाहता। एक बार रानी सती पर आप नाटक खेलना स्वीकार कर लीजिये। फिर नचिकेता पर अपना नाटक करियेगा। मुझे आपने बचपन से देखा है, इसलिए मेरी बात मान लीजिये। मैं आपको बहुत बड़ा जीनियस मानता हूँ।"

जिस दुनिया में हेमन्तकुमार को बेवकूफ़ इम्प्रॅक्टिकल समझा जाता था, उसमें एक आदमी तो उन्हें जीनियस मानता है। वे रुक कर बोले – "कल सुबह आपको जवाब दूँगा!"

घर पर बीवी के रवैये को वह शादी के बाद से देख रहे थे। अब सारे घर के अलावा विनोबाजी की शिष्या उनकी बहिन का भी रुख साफ़ था। खुशी में बहुत दिनों बाद उसने हेमन्तकुमार से मज़ाक किया – "मुझे तो डर था कि नीहार को भी तुम अपना जैसा बना दोगे। जीनियस तो हमेशा भूखों ही मरते हैं, इसलिए एक घर में एक जीनियस ही काफ़ी है।"

दूसरे दिन हेमन्तकुमार ने 'रानी सती' नाटक डायरेक्ट करना स्वीकार कर लिया। गीतकार सुरेन्द्र मिसरा एक संकलन के सम्पादक को हेमन्त का परिचय लिखवाते हुए बोले – "शिक्षा व व्यवसाय - जीविका।" फिर जैसे ऊपर से कहा – "बेटे से बाप ने अक़ल सीखी है। वह गुजराती बिज़नेस में गया, यह सेठियों की कम्पनी में। जैसे उनके दिन फिरे ऐसे भगवान सबके दिन फेरें!"

जमनादास नाटक कम्पनी का 'रानी सती' नाटक बम्बई में खूब ही चला। बीस-बीस रुपये के सब टिकट खिड़की खुलते ही बिक जाते थे। एक कारण तो इसका यह था कि भारतीय जनता पार्टी व अन्य एक-दो पार्टियों का ठोस समर्थन इस नाटक को मिला था और दूसरे राजस्थान के लोग अपने दस-बारह व्यक्तियों के परिवार को लेकर चार-चार बार खेल देखने आते थे।

शायद समधी को समर्थन देने और अपनी सांस्कृतिक रुचि का परिचय देने के लिए नरसीदासजी की पत्नी ने इसके पचास टिकट खरीद कर अपने मित्रों को बाँटे।

कुल मिलाकर तीस हज़ार रुपये हेमन्तकुमार को मिले और उन्होंने लिखने की एक मेज़ खरीदी, गो घर में जगह की तंगी थी।

रानी सती का पार्ट किया था बंगाली लड़की मदालसा गुहा ने। घर-घर में पूजा की जगह मदालसा गुहा के चित्र लग गये। कम्पनी को यह फ़ायदा अलग से हो रहा था। मदालसा के बड़े-बड़े फोटोग्राफ़ पचास-पचास रुपये में बिकते थे। मदालसा के साथ हेमन्तकुमार ने बहुत मेहनत की थी। स्वयं उसी के शब्दों में – "हेमन्त बाबू जैसा डायरेक्टर कलकत्ते में हो तो हो, बम्बई में तो नहीं है!"

घर पर उनकी पत्नी बोलीं – "अपनों से बैर, परायों से नाता! कितना ही मान रखो इनका, आग का गोला ही बने रहते हैं।" सुरेन्द्र मिसरा का एक बहुत लोकप्रिय मज़ाक था – "एक सती ने तीस हज़ार दिये। अब जौहर पर नाटक करेंगे, तो जाने कितने हज़ार मिलेंगे। बी. जे. पी., आर. एस. एस. की ही एक ब्रांच तो है। लोग अब देखेंगे महान डायरेक्टर का असली स्वरूप!"

एक दिन कागज़ खरीदने हेमन्त फोर्ट में जा रहे थे। पत्नी ने सुबह-सुबह गरम-गरम टोस्ट और चाय दी थी। वह सोच रहे थे कि जीवन में इस तरह टोस्ट और चाय कितने बार मिले हैं। कागज़ कम से कम साठ रुपये के आयेंगे और आने-जाने का किराया आठ रुपये और लौटते हुए उन्हें और भी कुछ सामान लाना था। बीवी से बोले – "सौ रुपये छुट्टे हों तो जरा देना। मेरे पास पूरा सौ का नोट है!" बीवी ने अपना पर्स खँगालते हुए कहा – "मेरे पास कुल बहत्तर रुपये हैं और फिर मुझे भी ज़रूरत है!" थोड़ी देर सोच कर बोले – "चलेगा। सत्तर रुपये ही दे दो!" नयी बहू ने हमदर्दी से कहा – "मैं दूँ पचास रुपये! डैड कहते हैं कि हमेशा कम-से-कम सौ रुपये एक्स्ट्रा लेकर जाना चाहिए!" "नहीं, मेरे पास सौ का नोट है!" कह कर हेमन्त चले गये।

एक घंटे तक बस की लाइन में खड़े थे और बस नहीं आयी, तो वह ट्रेन से जाने को मुड़े ही थे कि उनकी समधन ने अपनी टॅक्सी उनके पास लाकर रोकी। उनके पास उनकी बहिन विनोबीजी की शिष्या वनिता बैठी थी। समधनजी बड़ी आवभगत से बोलीं – "कहां जा रहे हैं? चलिये, हम छोड़ देंगे!" हेमन्त नमस्कार करके बोले – "क्षमा कीजिये। मुझे ट्रेन से ही जाना है। आप लोग कहां जा रहे हैं?" वनिता बोलीं – "विनोबाजी आये हैं तो इन्हें उनके दर्शन को ले जा रही हूँ। इतने प्यार से कह रही हैं, तो बैठ जाओ ना!" हेमन्त बैठ गये।

शाम को लौटते हुए गीतकार सुरेन्द्र मिसरा उन्हें मिले। दूसरे दिन 'कलापी' के सम्पादक ने सड़क पर उनसे मज़ाक़ किया – "चलिये, हेमन्त बाबू! लड़के की शादी से आपकी सवारी का इंतज़ाम हो गया। नाटक भी चलने लगा। सुना, आपकी समधन ने पचास टिकट खरीद कर अपने दोस्तों को बाँटे। कल पांच टिकट 'कलापी' के दफ्तर में भी भिजवाये थे। मैंने वापस कर दिये। भइया, बुरा न मानना मैं सती प्रथा के विरुद्ध हूँ।" हेमन्त कुछ नहीं बोले। " खैर जियो प्यारे! तुम खुश तो हम खुश!" कह कर 'कलापी' के सम्पादक आगे चले गये।

एक दिन कलकत्ता से एक ड्रामा डायरेक्ट करने का निमंत्रण आया। साथ के पत्र में लिखा था कि कलकत्ते के बंगाली समाज को शर्म आती है कि बंगाली का इतना अभिमानी कवि मारवाड़ियों के दक़ियानूस ड्रामे डायरेक्ट करता है। बात हेमन्त को लगी। तैश में वह पंखा चलाकर उत्तर लिखने बैठा। पत्नी गरम पानी से नहाकर आयीं और उन्होंने पंखा बन्द कर दिया। हेमन्त झुंझला उठे – "मैं बहुत जरूरी ख़त लिख रहा हूँ! इस गरमी में कैसे लिखूंगा!" पत्नी व्यंग्य से बोलीं - "जब पंखा नहीं था तब कैसे लिखते थे! पंखा तो नीहार ने लगवाया है!"

सचमुच हेमन्तकुमार को लगा कि उनका स्वभाव और आदमियों से बहुत शान्त है। उन्हें संसार का स्वरूप जितना स्पष्ट होता जाता था, उतना ही उनका स्वभाव शांत होता जाता था।

इस अंधेरे जंगल में दूर जलता एक ही प्रकाश था – मदालसा गुहा। जिस कलकत्ते की कम्पनी में वे दोनों थे, उसमें नायक का अभिनय करनेवाले एक खूबसूरत लड़के सज्जाद से उसे बहुत प्यार था। शायद सज्जाद शादी-शुदा न होता, तो उससे शादी करने को मदालसा मुसलमान भी हो जाती। यद्यपि सज्जाद क़ानूनन चार शादियां कर सकता था, मगर उसकी पत्नी यह कभी बर्दाश्त न करती। सज्जाद ने मदालसा को समझाया था – "अगर वह खुदकुशी कर ले या रात-दिन रोती-पीटती रहे तो क्या हम लोग खुश हो सकेंगे? तुम्हारे आने के बाद तो वह एक मिनट भी घर में नहीं रहेगी। कहां जायेगी? दुनिया में उसका कोई ठिकाना नहीं। और मुझ से शादी करने वह माँ-बाप को छोड़कर बांग्ला देश से आयी है। 'एक्टर्स यूनियन' का सेक्रेटरी उसका सगा भाई है। वह भी हमें चैन से न बैठने देगा। मैं अपने नहीं, तुम्हारे बारे में सोचता हूं। तुम खुश न होगी। सोचो! नहीं तो तुम्हारे कहने से तो मैं कुछ भी कर सकता हूं!"

मदालसा जानती थी कि सज्जाद सच कह रहा है। वह उसकी बीवी, उसके भाई और खुद अपने को अच्छी तरह जानती थी। सेठ जमनादास ने जब हेमन्त

को बम्बई बुलाया, तो वह भी आ गयी। और हेमन्त के प्रोत्साहन और डायरेक्शन की वजह से ही वह कहां की कहां पहुंच गयी थी। बम्बई में किसी भी अभिनेत्री को इतना ऊँचा वेतन नहीं मिलता था।

एक दिन जब नीहार और उसकी पत्नी उसके सुसरालवालों के साथ आरे मिल्क कॉलोनी में पिकनिक को जानेवाले थे, तो हेमन्तकुमार ने मदालसा व सेठ जमनादास को खाने को बुलाया। ढाई-सौ रुपये की मछली लाकर बनाने बैठे, किन्तु उनकी पत्नी को मछली की गंध असह्य थी।

नाटक कम्पनी पुरानी बिल्डिंग में थी और मदालसा गुहा को रिहर्सल के लिए वह घर ले आये। बहू ने बाहर के कमरे से अन्दर जाने को इंकार कर दिया – "अगर यह मेरा मकान है तो मैं यहां से एक क़दम भी नहीं हटूंगी !" हेमन्त, मशहूर ऐंठू हेमन्त ने वापस कम्पनी में रिहर्सल करना तय किया, मगर वे चुप रहे।

मदालसा हेमन्त के निकट आ रही थी और अंधेरे जंगल में वही एक दूर जलता दिया था।

एक दिन हेमन्त सुबह उठकर जाने की तैयारी कर रहे थे कि नीहार की पत्नी ने कमरा धोने का प्रोग्राम बनाया। आठ बजे झाड़ू और पानी की बालटी लाकर उसने रखी और पड़ोसन से बात करने में खो गयी। थोड़ा पानी डाल कर वह बात करने चली गयी थी। जब कीचड़ में से होकर हेमंत को जाना पड़ा और उनका पायजामा कीचड़ से गीला हो गया, तो वह बोले - "तीन घण्टे से यह पानी फैला है और झाड़ू रखी है !" नीहार की पत्नी ने तेहे से कहा - "इस कमरे में ज़्यादातर मुझे रहना होता है। जैसे चाहूँगी, रहूँगी !"

नीहार भी गुस्से में उबलता बाहर आ गया - "बम्बई में मकान नहीं मिलते इसीलिए हमें यह दिन देखना पड़ रहा है। मगर हमारे भी हाथ-पांव टूटे हुए नहीं हैं।"

दो ही कमरे थे और अन्दर का कमरा नीहार को इसलिए नहीं दिया गया था कि रक्तचाप की दवाई की वजह से हेमन्त को अन्दर वाले कमरे से होकर ही, लघुशंका के लिए जाना पड़ता और इस तरह नींद व आराम में ख़लल डालना नवदम्पति को परेशान करना होता।

तो अब अपने ही घर में मेहमान होकर हेमन्त जब बहुत बौखला जाते थे, तो मदालसा गुहा के पास भाग जाते थे। मदालसा उन्हें बहुत चाहने लगी थी। उन्हीं की मेहनत से सारा राजस्थानी समाज 'रानी सती' कह कर उसे प्रणाम करता था। बहुत भावुक होने के कारण मदालसा हेमन्त के लिए अपनी बचत के सब पैसे खर्चने को तैयार थी। पर बम्बई की एक हिंदी नाटक कम्पनी की बंगला अभिनेत्री के पास कितने पैसे हो सकते हैं।

कई बार हेमन्त मदालसा के प्रेम से इतने अभिभूत हो जाते थे कि पचास

वर्ष की उम्र में मदालसा से विवाह करने की बात सोचा करते थे, पर कुशलता से यह बात मदालसा से छिपाते थे। आखिर वह एक निपुण अभिनेता थे।

फिर उन्हें याद आता था कि उनकी पत्नी भी शादी से पहिले उनसे ऐसा ही प्रेम करती थी। यह भी उन्होंने देखा था कि मदालसा ने सज्जाद से आठ बरस तक कैसे प्रेम किया था। उन्हें लगता था कि सज्जाद अगर शादी-शुदा न होता, तो मदालसा जब अठारह बरस की उम्र में उससे मिली थी, तभी शादी कर लेती। चयन में नम्बर दो होना, उनके अहंकार को बिलकुल स्वीकार न था। सो मदालसा से बहुत ही प्रेम करके भी वह उससे बहुत दूर-दूर ही रहते थे। वह तो शादी-शुदा थे, मगर अकेली मदालसा बहुत निकट सम्पर्क में अपना आपा खो सकती थी और नीचे हज़ारों फुट गहरी खाई थी।

शादी का एक रुटीन होता है और क्वांरों का एक रुटीन होता है और हेमन्त मानते थे कि सामाजिक न्याय व धार्मिक न्याय के अलावा एक होती है सद्‌भावना। शादी-शुदा होने से उनका जीवन ऐसा था कि आंच उन्हें लगना संभव नहीं था, पर मदालसा गुहा की नैसर्गिक वृत्तियों को इतने सख्त तनाव में रखने के ख़तरे को वे समझते थे। ऐसे तनाव के कारण व्यक्ति के स्वाभाविक व्यवहार भी उलटे-सीधे हो सकते हैं।

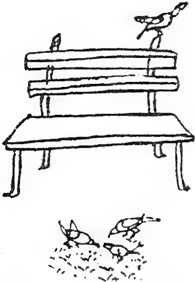
मदालसा गुहा उन्हें बहुत प्यार करती थी और उसकी अस्मिता केवल उन्हीं के कारण सुरक्षित थी, फिर भी शरीर का ज़रा-सा भी तत्व आने देने के बाद वह अपनी बीवी से छुपकर एक गुप्त जीवन नहीं जी सकते थे। आज के आधुनिक युग में पतनोन्मुख समाज में लिबरेशन या स्त्री-स्वातंत्र्य के नाम पर वफ़ादारी वज़ेदारी न थी। मगर हेमन्त एक सच्चा और खरा जीवन जीना चाहते थे।

एक दिन बहुत कुछ हुआ और हेमन्त को लगा कि अब उस घर में उनका निबाह न होगा। जब उनकी बीवी ने ज़ोर देकर कहा – "बहूरानी के पीछे तुम क्यों पड़ गये हो कि हमेशा गड़े मुर्दे ही उखाड़ते रहते हो। जब चार बर्तन साथ रहते हैं, तो टकराते ही हैं।" तो शाम के धुंधले पड़ते प्रकाश में वे कभी न लौटने का संकल्प करके घर से निकल पड़े।

मदालसा गुहा ने उनका स्वागत किया और उनको आश्वासन दिया कि उसके पास काफ़ी रुपये हैं। एक्सप्रेस ट्रेन में रिश्वत देकर इन्हें एक कूपे भी मिल गया और रास्ते-भर मदालसा गुहा स्वप्निल आवाज़ में भविष्य के सपने बनाती रही।

कलकत्ते में प्लेटफॉर्म पर उतरते ही सज्जाद मिला और मदालसा के दोनों हाथ हाथों में लेकर बोला - "ओह मदालसा! मैं ख़्वाब तो नहीं देख रहा हूँ।" और उसने हेमन्त की ओर इशारा किया। मदालसा हंसकर बोली - "यह हैं हेमन्तदा। हमारे संग रहेंगे।"

काम तो आयेगी !



पोस्ट ऑफिस में टिकट की खिड़की पर बैठनेवाली लड़की श्यामा से सब बहुत खुश थे। वह लंगड़ी थी, मगर बैठी हुई लड़की को देख कर उसका लंगड़ापन कैसे समझा जा सकता था! साम्यवादी पार्टी उन दिनों अन्डरग्राउन्ड थी और दादा राजपाल के नाम वारंट था। इसलिए उनके लिए टिकट-कार्ड आदि लाना और डालना भाई त्रिलोकसिंग का काम था। साम्यवादी पार्टी में त्रिलोकसिंग को आठ साल हो गये थे। भाई राजपाल के सेक्रेटरी बनने के पहिले उसके पिता भाई अणखी सेक्रेटरी थे। बचपन से ही उसने अपने घर में यही सब देखा था। भाई अणखी की सायकिल की दूकान थी और बारह महीने में से आठ महिने जेल में रहने के कारण धंधा कुछ खास चलता नहीं था। इसलिए त्रिलोकसिंग ने ग़रीबी को देश-सेवा का एक आवश्यक अंग मान लिया था।

पुलिस से बचने के लिए रात को दो बजे इश्तिहार चिपकाने वह निकलता था और सुबह पाँच बजे तक लेई की बू से भरा घर लौट आता था। रात की तंदूरी में थोड़ा मक्खन लगाकर गिलास-भर चाय के साथ खा-पीकर वह फिर सायकिल की दूकान पर चला जाता था।

सायकिल की दूकान पर एक बजे तक बैठ कर वह घर जाकर खाना खाता था, और फिर पार्टी के काम पर चला जाता था। पिता के ही सेक्रेटरी होने के कारण अधिकतर पार्टी के दफ़्तर में वह जाता ही नहीं था। घर से ही काम पर चला जाता था। ज़्यादातर उसका काम पत्र-व्यवहार के काम को पूरी तरह संभालना था, जिसमें डाक का सामान लाना, चिट्ठियों को डालना, सभी शामिल थे।

पाँच साल से टिकट की खिड़की पर बैठनेवाली श्यामा से उसको स्नेह हो चला था। पहिले दिन जब उसने टिकिट की खिड़की पर उसे देखा, तो उसने हिरनी-सी उसकी आँखों के भोलेपन को मन–ही-मन बहुत सराहा। नाक-नक़्शा निश्चित ही उसका असाधारण था। व्यवहार में भी बहुत सरल व संवेदनशील होने के कारण लोग उसकी बहुत इज़्जत करते थे। रोज़-रोज़ एक दूसरे को देखते रहने के कारण वह त्रिलोकसिंग को देखते ही मुस्कुराने लगती थी। एक बार सौ रुपये का नोट फटा होने के कारण पास की मनीऑर्डर की खिड़की पर के कांबले ने उसे वह नोट लेने को मना किया। त्रिलोक के पास दूसरा नोट नहीं था, सो कांबले की राय के खिलाफ़ उसने वह नोट ले लिया। कांबले के अहंकार को ठेस लगी। वह चिढ़कर बोला –

''शाम को पैसा जमा करते हुए आटे-दाल का भाव मालूम पड़ेगा।'' श्यामा ने बहुत धीरे से कहा – ''यह नोट मैं ले लूंगी और इसके बदले दूसरा नोट रख दूंगी!'' त्रिलोक जो यह सब सुन रहा था, बोला – ''लाइये, मैं दूसरा नोट लेकर आता हूँ!'' श्यामा ने बिना कुछ कहे पन्द्रह रुपये त्रिलोक को दे दिये और नोट रख लिया।

ऐसे ही एक बार पाँच रुपये के बीस टिकिटों में से दो निकालते हुए बेजगह फट गये। आग्रह करके त्रिलोक ने वे टिकिट ले लिये। त्रिलोक का हृदय पोस्ट आफ़िस जाने के प्रसंग से ही कोमल भावों से भर जाता था।

मगर त्रिलोक भला यह कैसे समझ सकता था कि वह बाएँ पाँव से लंगड़ी है।

यह राज़ उस दिन खुला, जिस दिन किसी राजनैतिक पार्टी के 'बम्बई बन्द' करने के आह्वान पर बम्बई बन्द थी, और डाकघर में केवल दो-तीन आदमी ही आये थे। उस दिन उसने उसे उस छोटे से डाकघर में लंगड़ा कर चलते देखा। पीछे की तरफ़ रखे काई - लगे मटके से उसने ऊपर से पानी पिया और दूर से ही इशारे से पूछा कि क्या वह पानी पियेगा। उसे प्यास नहीं लगी थी, फिर भी उसने पानी पीना स्वीकार किया। पोस्ट मास्टर आये नहीं थे, और जैसे ही वह अन्दर घुसे, उन्होंने श्यामा को त्रिलोक के हाथ में पानी का गिलास थमाते देखा। एकदम बोले – ''बाई, पोस्ट ऑफिस में आने वाले सब लोगों को पिलाने के लिए यह पानी नहीं है।''

घबराकर श्यामा ने दबी आवाज़ में 'सॉरी' कहा और त्रिलोक के गले में से पानी जैसे बाहर निकलने की कोशिश करने लगा।

त्रिलोक उससे पूछना चाहता था कि उसके बाएँ पांव में चोट कैसे आयी, मगर पोस्ट मास्टर साहब के वहां खड़ा होने की वजह से वह यह पूछ न सका।

उसके पिता भाई अणखी पार्टी के काम से अमृतसर गये हुए थे। बम्बई बंद का फिर दूसरी बार आह्वान किया गया और साम्यवादी पार्टी ने उसका विरोध किया और अमूमन जैसा होता है साम्यवादी पार्टी पर हमला किया गया। भाई अणखी की ग़ैरहाज़िरी में गुंडों ने उनकी दूकान से पचीस-तीस सायकिलें लूट लीं।

इतनी हानि बर्दाश्त करने की शक्ति परिवार में नहीं थी। जब भाई अणखी लौटे तो उधार लेने की शुरूआत हुई। भाई अणखी उनकी पत्नी गुरुप्रिया और त्रिलोक व उसकी बहन तृप्ता सभी मानसिक रूप से उखड़ गये। पार्टी का काम ढीला पड़ने लगा और तीन बार चेतावनी देने के बाद भाई अणखी को कुसूरवार पाया गया और सेक्रेटरी के पद से उन्हें हटा दिया गया।

हमें

स्व

"मे
अप
आं

उस
बित
लग
सच

तो

आये

खिलाफ़ पर्चे बाँटने के अपराध में पार्टी को तभी ग़ैरकानूनी
ा और पार्टी अन्डरग्राउन्ड चली गयी। भाई अणखी और भाई
ो एक गली में गुमशुदा हो गये व त्रिलोक को ही उनका खाना
पड़ता। मां को बुखार होने के कारण और उधार न मिलने
सिर्फ़ रोटी और सूखी उड़द की दाल ही होती। त्रिलोक को यह
ाता कि भाई राजपाल आठ रोटियों में से केवल एक रोटी उसके
ो देते और मुश्किल से एक चमचा उड़द की दाल! एक दिन
ोला – "बाबा, कल से क्या मैं ज़्यादा रोटियां लाया करूँ?"
ेटा, उधार की रोटी है! वापस करनी है।" भाई राजपाल को
ने अपने बाप की दूकान से संतरे के मुरब्बे का एक टीन दिया
ब्बे के साथ रोटी खाते रहे, जैसे उन्होंने कुछ सुना ही नहीं।
ून खौल उठा। उसने डरते-डरते कहा –"भाई राजपाल, आप
क का राशन चार रोटी तय किया है!" "तो क्या मेरी रोटी
ही है तो कल से तुम रोटी मत लाया करो। मैं सरोज बहनजी
करूंगा!" त्रिलोक ने घबराकर माफ़ी मांगी, पर भाई राजपाल
ोता था।

के किसी काम से भाई अणखी ठाणे गये और पुलिस ने उन्हें
की एक दूकान पर गिरफ्तार किया, जहाँ वह भाई राजपाल
सिगरेट के दो पॅकिट खरीद रहे थे।

ा यही नीति थी। उनकी किसी भी बात का ज़रा-सा भी विरोध
क्ति को कहीं काम पर भेजकर पुलिस को इत्तला दे देते थे।
होने की वजह से वह व्यक्ति गिरफ़्तार हो जाता था।

लड़के ने और सज़ा मिली बाप को। बुखार में पड़ी त्रिलोक
ाय रे तिल्लोकी! तूने बेटा होकर बाप के साथ दुश्मन का-
ें जो खाना मिलेगा उसका तू क्या कर लेगा रे तिल्लोकिये।
नहीं लेते। कितना उधार हो गया है। दूकान पर बैठनेवाला
ठ, पार करो हमारा बेड़ा महाराज। जो गलती हो गयी उसे

का रोना-पीटना और रोज़ दो बार दस मील खाना ले जाने
ीन दिन नहा भी नहीं पाता। भाई राजपाल को शाम का
क बगीचे की बेंच पर बैठ गया। बहुत थका हुआ था, सो
या। इतने में सामने बेंच पर उसने श्यामा और एक लड़की

को बैठे देखा। दोनों ओर से हर्ष प्रकट होने के बाद तीनों एक बेंच पर बैठ गये। श्यामा बीच में थी और उसके बदन की गर्मी त्रिलोक महसूस कर रहा था। दोनों एक-दूसरे को देख कर मुस्कुराते रहे, फिर त्रिलोक बोला – "आपकी टाँग में चोट कब आयी ?" इस प्रश्न का कोई उत्तर न पाकर त्रिलोक ने आकाश की ओर देखा। साथ की लड़की बोल पड़ी – "यह मेरी बहिन है। हमारी माँ बचपन में ही मर गयी। अण्णा कथा कह कर, श्राद्ध करवाकर, सत्यनारायण की कथा कह कर थोड़ा बहुत कमाते हैं। उन्होंने दस साल पहले एक रखेल रख ली है। उस रखेल के लड़के ने श्यामा को छत पर से गिरा दिया था। तब श्यामा सिर्फ़ आठ बरस की थी। उसी में इसकी टांग टूट गयी। अब हम दोनों बाप से अलग रह कर अपना कमाते हैं।"

त्रिलोक का मन व शरीर बहुत पराजित हालत में था। वह तो जैसे समझ ही नहीं सका कि इस स्थिति में उसे क्या करना चाहिए ! "कहां रहते हैं आप लोग !" उसने पूछा !

"गिरगाम की एक चाली में ! मैं एक मारवाड़ी के घर खाना पकाती हूँ। उसी ने उस चाली में हमें कमरा दिलवाया है। उस मारवाड़ी की ही है वह चाली। अच्छे लोग हैं। हम से पगड़ी भी नहीं ली है। शाम को हम उनकी चाय बनाते हैं तो हम भी चाय पी लेते हैं !"

त्रिलोक उलझता जा रहा था – "दोनों वक्त खाना बनाने में तो बहुत मुश्किल होती होगी ?"

"इसमें कोई तकलीफ़ नहीं। मैंने भी एस. एस. सी. पास किया है और छुट्टी के दिन श्यामा भी मेरी मदद करती है !"

"नीचे बैठने में श्यामा को तकलीफ़ नहीं होती ?"

"थोड़ी तकलीफ़ तो हरएक को होती है। टाँग लम्बी करके बैठना पड़ता है। दोनों टाइम पेट भर जाता है। बॅन्क में भी हम दोनों का मिलाकर दस हज़ार हो गया है।"

त्रिलोक बुखार में पड़ी अपनी मां के बारे में सोच रहा था। अब उसे चलना चाहिये। उसने श्यामा की तरफ़ देखा। वह बड़े स्नेह से उसे ही देख रही थी कुछ-कुछ इस भाव से कि जाने दीजिये, हमारी मदद करना आपके बस के बाहर की बात है।

कुछ माफ़ी-सी माँगते हुए उसने कहा – "आपको मैं एक बहुत ही अच्छी लड़की समझता हूँ। सोचता हूँ भगवान आपको यह सज़ा क्यों दे रहे हैं !"

श्यामा अन्यमनस्क-सी बोली – "सज़ा तो तब होती जब हम मेहनत की कमाई नहीं खा सकते। भगवान ने हमे कमाने का अवसर तो दिया है !"

"तो क्या सारी उम्र आप लोग ऐसे ही जियेंगे?"

"जब तक हमारे करम पूरे न होंगे। और कर भी क्या सकते हैं? भगवान हमें कभी दूसरों पर निर्भर न करें!"

"और शादी?" त्रिलोक के मुंह से यह भयानक शब्द कैसे निकल गया, उसे स्वयं नहीं मालूम।

श्यामा का मुंह रुआंसा हो गया। उसकी बहन ने नक़ली हंसी हंसकर कहा– "मेरी शादी तो श्यामा के बाद हो सकती है। और श्यामा से शादी तो कोई दूसरा अपंग ही करेगा। बचपन में इसकी शक्ल की बहुत तारीफ़ थी। लोग कहते थे इसकी आंखें शकुन्तला की-सी हैं?

"शकुन्तला आपने पढ़ी है?"

दोनों एक साथ बोलीं – "वह तो हमारे कोर्स में थी!"

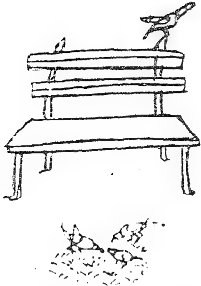
अनजाने ही त्रिलोक ने श्यामा की ओर देखा। निश्चित ही इतनी सुन्दर आंखें उसने कभी नहीं देखी थीं। छह महीने नितान्त स्नेहहीन और संत्रस्त जीवन बिताते-बिताते वह लगभग सूख गया था। उसका हंसमुख स्वभाव मधुरता के अभाव में लगभग मृत होता जा रहा था। दोबारा उससे गलती हो गयी – "आँखें श्यामा की सचमुच बहुत ही खूबसूरत हैं। इतनी सुन्दर आंखें मैंने कभी नहीं देखीं!"

बहिन ने कहा – "तो आप इससे शादी करेंगे? लंगड़ी है तो क्या, काम तो आयेगी!"

"इसका जवाब कल दूंगा, मेरी मां अकेली होगी। चलता हूँ!"

रास्ते-भर जैसे किसी बेहोशी में त्रिलोक यही सोचता रहा कि 'काम तो आयेगी' का क्या मतलब है?

फ़रिश्तों में नफ़रत नहीं होती

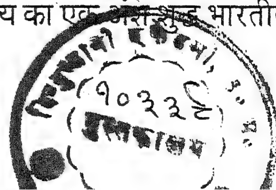


वह कौन-सी शक्तियाँ हैं, जो मनुष्य को देवता न बनने देने में हठपूर्वक कृतसंकल्प हैं? भगवान बुद्ध की सिद्धि के महाद्वार पर मार की सेना है और सब अवतारों का ही क्या ऐसा नहीं है? जैसे भगवान भी मनुष्य देह स्वीकार कर लें, तो इस लड़ाई में से निकल नहीं सकते। इसीलिए तो उन्हें अवतार कहा जाता है कि वे बड़ी-से-बड़ी शक्ति को पराजित कर सकते हैं। राम को भी शक्ति की पूजा करनी पड़ी। और शक्ति ने युद्ध को ही रुकवा क्यों न दिया! रामकृष्ण देव कहते थे कि इतिहास में महापुरुषों के निर्माण की गौरव-गाथा ही इसका प्रयोजन है, किन्तु आप इससे भले ही आश्वस्त हो जायें, मैं नहीं होता। याने गौरव-रक्षा के लिए लड़ना और विनाश के लिए प्रस्तुत रहना होता है।

आप मध्यप्रदेश के प्रसिद्ध कमिश्नर किरीट सक्सेना के कुटुंब की गाथा तो जानते ही होंगे। पुलिस कमिश्नर किरीट के नाम से गुंडे तो कांपते ही थे, चम्बल के डाकुओं के पुराने-से-पुराने गिरोह की रूह फ़ना होती थी। साढ़े छह फुट के गोरे जवान किरीट सक्सेना की उठी हुई मूँछें बिच्छू के डंक की तरह लगती थीं। इतना होने पर भी अपने मातहतों को बच्चे की तरह देखते थे। घर पर बच्चों को कन्धे पर बिठाकर घुमाते थे, तो कौन कह सकता था कि बीस दिन पहिले ही यह आदमी चम्बल की घाटियों से सिर्फ़ 30 सैनिकों को लेकर 150 डाकू गिरफ्तार करके लाया है। जयप्रकाश नारायण के शस्त्र-समपर्ण के विरुद्ध होने से कई पत्रकार किरीट साहब को पसन्द नहीं करते थे।

क्लब में और इलाक़े में कहीं भी किरीट विनय की मूर्ति थे, मगर पुलिसवाले घूस लिये बिना नहीं रहते, इस प्रतिष्ठा को वे सदा के लिए नेस्तनाबूद करने की ज़िद लेकर बैठे थे। पुलिसवाले छोटी-छोटी घूस तो ज़रूर लेते होंगे, किन्तु बड़े-बड़े अफ़सरों में से कई इस लालच से बचते थे – काफ़ी डर पैदा हो गया था।

इतने कड़ियल जवान की पत्नी बहुत ही साधारण दिखती थी। नाटी, काली और नाक भी कुछ बुरी शक्ल की। मगर जब किरीट साहब बीवी के साथ किसी आयोजन में जाते थे, तो बीवी का खयाल क़रीब क़रीब अठाहरवीं सदी के इंग्लिस्तान के रईसों की तरह रखते थे। किसी पुलिस कमिश्नर को कभी भी स्त्री के प्रति इतना सौजन्यपूर्ण नहीं देखा गया था और यह उनके आभिजात्य का एक अंश शुद्ध भारतीय मुद्रा थी। अंगरेज़ियत तो उन्हें छू भी नहीं गयी थी।



ऐसे आदमी को नहाकर निकलते ही जब अपने विशाल बंगले के हॉल को पार करते हुए उन्हीं के अर्दली ने तलवार से मारने की कोशिश की, तो जैसे करोड़ों वॉल्ट की बिजली सारे प्रदेश में दौड़ गयी। किसी ने कहा कि उस अर्दली पर उन्होंने जुर्माना किया था। किसी और ने कहा कि वह अर्दली चम्बल के डाकू का रिश्तेदार था, किसी और ने कहा कि किसी ईर्ष्यालु ने इस हत्या के लिए उसे दो लाख रुपये दिये थे। किसी ने कहा कि किसी मंत्री ने जो किरीट साहब से नाराज़ था, उनका खून करवा दिया।

तहक़ीक़ात के बाद जो सत्य मालूम हुआ, उसे बहुत कम लोग जानते हैं। घर के लोगों ने जिसमें उनके बच्चे भी थे, इस सत्य को कभी भी मालूम नहीं होने दिया। उनके अर्दली का उनकी बीवी से रिश्ता था! इतने रौबीले पांच बच्चों के बाप की लगभग कुरूप पत्नी ने ऐसा उसी लम्बे-पतले अर्दली में क्या पाया होगा भला! किरीट बाबू इस संसार के आम धरातल से उठने की कोशिश कर रहे थे। उनकी सेवाओं के उपलक्ष्य में सरकार ने लम्बे-चौड़े कम्पाउंड की ग्यारह कमरोंवाली वह कोठी लगभग उन्हीं के परिवार को दे दी थी।

उनके प्रायः सब बच्चे आठवीं और ग्यारहवीं कक्षा में थे – तीन लड़के और दो लड़कियां। सौभाग्य से तीनों लड़के उन्हीं के-से खूबसूरत थे और लड़कियां मां पर गयी थीं, गो मां की-सी नाटी कोई भी नहीं थी। पहले नम्बर के लड़के भुवन में अपने छोटे भाई द्वारिका के लिए बहुत लगाव था, मगर भुवन के सौन्दर्य के बारे में लोगों का यह विचार था कि इतना खूबसूरत कोई आदमी इस पृथ्वी पर हो सकता है, यह विश्वास भुवन को देखे बिना करना कठिन है।

भुवन स्कूल के दिनों से ही क्रिकेट टीम का कप्तान और सारे स्कूल का सबसे कुशाग्रबुद्धि छात्र समझा जाता था। खेल-कूद में इतना निपुण लड़का पढ़ाई में भी इतना विलक्षण हो, यह बहुत दुर्लभ संयोग है। बावजूद इस असह्य भयंकर त्रासदी के वह अपने से छोटे भाई-बहिनों का बहुत ख्याल रखता था, यद्यपि माँ के प्रति थोड़ी-सी वितृष्णा स्वाभाविक थी। फिर भी इस वितृष्णा को वह व्यक्त कम ही करता था।

पढ़ने को वह विलायत गया और बॅरिस्टर होकर आया। लौटने पर उसने पाया कि उसकी एक बहिन ने एक मोज़ों की कम्पनी के अनपढ़ लड़के से शादी कर ली है। और दूसरी यद्यपि अविवाहित है पर गर्भवती है। धैयपूर्वक उसने इस स्थिति का सामना किया और लगा कि क्षोभ व घृणा के वह परे चला गया है। सबको बिना किसी भेदभाव के उसने जमवाया और छोटी बहिन का गर्भपात करवाकर उसे

इंग्लैण्ड के अपने एक दोस्त से विवाहित करवा दिया। उसने उसे गर्भपात का सत्य बता दिया था, क्योंकि न बताना उसे ज़बर्दस्त धोखा लगता।

सबको ठीक से ठिकाने लगाकर उसे जैसे सन्तोष हुआ और आप को क्या लगता है कि उसने क्या किया होगा! उसने एक बहुत बड़ी योग की संस्था खोली, जिसमें गुरुकुल कांगड़ी से बुलाकर शिक्षक रखे और पाँच बरस से विद्यार्थियों को भरती करके संस्कृत ज्ञान व ब्रह्मचर्य पर जीवन को प्रतिष्ठित करने की शैली के प्रचार में खूब ही मेहनत की। इस तरह घर का जमा पैसा लगभग समाप्त हो गया। लॉ कॉलेज के प्रिंसिपल की जगह को उसने स्वीकार किया और शाम को इसराज के बड़े उस्ताद मेहबूब अली से इसराज सीखना शुरू किया।

आप यह मानेंगे कि सुखी होने का उसे पूरा अधिकार था। मगर हा, भवितव्य! वह प्रेम को दिव्य मानता था और उसके जीवन में एक सुचारु गृहिणी का अभाव उसे और उसके चाहनेवालों को खलने लगा।

उसका विवाह अक्षय-तृतीया के दिन संस्कृत कॉलेज काशी के प्रिंसिपल की एकमात्र सुकन्या दीपिका से हुआ, जो व्याकरण के परचे में सौ में से छयानवे अंक लायी थी।

शादी के हफ्ते-भर के अंदर भुवन लॉ कॉलेज में प्रिंसिपल के फ्लॅट में जाकर रहने लगा और पत्नी से उसने फिर कभी बात नहीं की।

प्रिंसिपल भुवन ने कॉलेज की काया-पलट कर दी। हिंदुस्तान का वह सबसे अच्छा लॉ कॉलिज समझा जाने लगा। उसने हिंदू लॉ पर कई किताबें लिखीं, जिनमें से एक किताब 'हिंदू लॉ एन्ड मॉडर्न टाइम्स' योरप की कई भाषाओं में अनुवादित हुई। बड़ी-बड़ी कम्पनियों ने उसे दस गुनी तंखा देकर बुलाया, मगर उसने विनम्रता से माफ़ी माँग ली। भारतीय संगीत से इसराज को लुप्त होने से बचाना ही उसका जीवन लक्ष्य हो गया।

अनुमान किया जा सकता है कितनी स्त्रियाँ उस पर आसक्त हो सकती थीं। वह भी शाम के पाँच बजे से सॅकिण्ड शो समाप्त होने तक स्त्रियों से घिरा रहता। लोग आलोचना तो कितनी करते होंगे, यह भी सोचा जा सकता है। मगर भुवन इतना विनम्र और इतना हरदिलअज़ीज़ था कि लॉ कॉलेज के चपरासियों के कुटुंब के लोग तो उससे मदद मांगने आते ही थे, स्कूलों के शिक्षकों और म्युनिसिपाल्टी के क्लार्कों को वह उधार देकर वापस माँगना भूल जाता था।

फिर भी, ईर्ष्या और द्वेष का सामना तो देवताओं को भी करना पड़ता है। स्थानीय कॉलेज के भैंगे संस्कृत विभागाध्यक्ष कॉमन रूम में बैठकर अपनी व्यंग्य-

कला का परिचय देते हुए कहते – "कानून के पंडित को व्याकरण पसन्द नहीं आयी। योग और ब्रह्मचर्य के प्रचंड समर्थक व्यभिचारी भाव से रस की सिद्धि कर रहे हैं!" अंगरेज़ी के प्रोफ़ेसर डा. ललितबिहारी द्वारा भुवन की हिमायत पर फ़ारसी के प्रोफ़ेसर गोल मटोल जुत्शी साहब बोले – "इतने जूते मारें कि खोपड़ी गंजी हो जाये!"

कॉलेज में रोमन लॉ पढ़ानेवाली जूली पुनावाला भुवन पर इतनी आसक्त हो गयी, कि दस-दस बजे रात तक उसका पीछा छाया की तरह करती थी। उसके बाद अपनी गाड़ी पर भुवन उसे ड्राइव करके ले जाता था। लगभग एक बजे जब उसके घर पर छोड़ता, तो उसके कुटुंबवालों को यह खुशफ़हमी लाज़मी थी कि भुवन अपनी पत्नी को तलाक़ देकर जूली से विवाह कर लेगा।

लगभग एक साल बाद जूली पुनावाला ने आत्म-हत्या कर ली। पीछे एक चिट्ठी छोड़ी – "भुवन के बिना मैं नहीं जी सकती। अगर वह शादी न भी करे तो मैं उसकी ......" और आगे वह नहीं लिख सकी।

शहर के प्रसिद्ध समाचार पत्र 'ट्रबल्ड टाइम्स' का तरुण सम्पादक रायकृष्ण भुवन का विद्यार्थी रह चुका था; और भुवन जब अपने सूट प्रदेश के सबसे महंगे अंगरेज़ दर्जी 'कॉर्नेलियस' को देता था, तो रायकृष्ण का भी एकाध सूट जरूर देता था। रायकृष्ण पर नाराज़ भी होता था कि – "कैसे गँवारू कपड़े पहिनते हो! मैंने कॉर्नेलियस से कह दिया है। कपड़ा भी उसी के यहां से लो और बनवाओ भी उसी के यहां से। यह मार्क्स की चेलागिरी छोड़कर आदमी बनो! बाल कटवाओ! बी. ए. डीसेन्ट मॅन!" जब रायकृष्ण ने अखबार में दोष जूली पुनावाला का बतलाया तो जुत्शी साहब अपने लॉन पर बैठकर बोले – "यह साहबज़ादे तो उनके हिज़ मास्टर्स वॉयस ठहरे। इब्सन ने ऐसे ही आदमियों का भंडा 'पिलर्स ऑफ़ सोसायटी' में खोला है! हिप्रोक्रेट! बार्स्टड!"

रायकृष्ण की मां को भुवन अपनी सगी मां से भी ज़्यादा समझता था। बीस साल से दुखी होने पर वह उसी के पास जाता था। उसके ही बच्चों की तरह उसे जिज्ञी कहता था। जब उसने कहा – "भुवन, बेटा! अपने दुश्मनों को अपनी इज्ज़त खराब करने में मदद न करो!" तो भुवन हँसकर बोला – "जिज्ञी, इज्ज़त भी क्या टमाटर की टोकरी है कि जरा-सी बात से ख़राब हो जाये! वह औरत नहीं है जिज्ञी! मेरे साथ धोखा हुआ है!"

यह घटना अभी समाप्त भी नहीं हुई थी कि जज श्री रुस्तम घड़ियाली की एकमात्र बीसवर्षीय कन्या मनी घड़ियाली चौबीसों घण्टे भुवन के साथ दिखायी पड़ने लगी। यहां तक भी सुना गया कि दोनों ने मसूरी में शॉपिंग में पाँच दिन बिताये,

क्योंकि भुवन अब शादी करनेवाला है।

मिस्टर जुत्शी कॉलेज से घर जाते हुए रायकृष्ण के दफ़्तर में पहुँचे –"देख लो तुम्हारे उस्ताद और सरपरस्त बात करते हैं वेदों की, पर पारसी लड़कियों को अधिक पसन्द करते हैं! भाषण देते हैं ब्रह्मचर्य पर और भारत के इतिहास में इतना विषम व्यभिचारी न मिलेगा!"

रायकृष्ण ने शांति से कहा – "पारसी अपनी संस्कृति में हमारे बहुत निकट हैं और सर अगर व्यभिचारी हैं, तो आपके पेट में काहे का दर्द होता है! प्रोफ़ेसर साहब, आप उनसे कोई सम्बंध न रखिये!" बातें चल रही थीं, कि महान आश्चर्य! स्वयं भुवन अन्दर आया – "हलो डॉक्टर जुत्शी! मुझे आपसे ही मिलना था, मगर मिस घड़ियाली के साथ छुट्टी मनाने मसूरी चला गया। क्या मेहरबानी करके आज रात का खाना आप मेरे और मिस घड़ियाली के साथ 'कोरल रीफ़' में खायेंगे? जानते हैं ना मशहूर वेजिटेरियन हॉटेल? कि आज आपके पास टाइम नहीं है? मैं आपके लिए मोटर भेजूँ?" फ़ारसी के विद्वान जुत्शी साहब बहुत ही नरम पड़कर बोले – "मगर मिस घड़ियाली क्यों? मुझे उसकी कम्पनी पसन्द नहीं?" भुवन हंसकर बोला – "बहुत हसीन लड़की है और वही रूमी की फ़ारसी शायरी पर अथॉरिटी है! खा नहीं जायेगी आपको!" और फिर रुक कर बोला – "अगले महीने मैं उससे शादी कर रहा हूँ। सोलह को। सन्डे है। आपको आना ही है!" और जुत्शी साहब बहुत ही कृतज्ञ भाव से बोले – "ठीक है! जैसी आपकी मरज़ी! मगर मुझे घर वापस लौटने की जल्दी होगी!" "किसलिए? चलिये, मिसेज़ जुत्शी को लेकर आइयेगा! उनकी पेंटिंग कैसी चल रही है? फिर तो घर लौटने कि जल्दी न होगी।"

सारे शहर में बात की बात में फैल गया कि भुवन शादी कर रहा है फ़ारसी कविता की एक पारसी पंडिता मिस मनी घड़ियाली के साथ। शादी 16 को है। पन्द्रह की शाम को ही शहर-भर में सब जान गये कि इंग्लिस्तान का फिल्म डायरेक्टर लिओनल स्पेंडर जो भारत में हिन्दुस्तानी हिरोइन को लेकर एक फ़िल्म बनानेवाला था, और भुवन का बहुत बड़ा दोस्त था और उसी के पास आकर ठहरा था, और मनी घड़ियाली भुवन की ग़ैरहाजिरी में शादी के सब कपड़े और अन्य भेंटें लेकर हॉलीउड में काम पाने के लिए लिओनल स्पेंडर के साथ भाग गयी है।

इस घटना से भुवन के प्रति लोगों की हमदर्दी काफ़ी बढ़ी, मगर मज़ाक़ करनेवालों की भी कमी न थी। स्थानीय कॉलेज के संस्कृत विभागाध्यक्ष एक ही मज़ाक़ दोहराते रहते थे – "सिर मुंडाते ही ओले पड़े! ग़रीब के बनवाये कपड़े भी ले गयी। सुना है स्विटज़रलॅन्ड से लायी हुई डेढ़ लाख की, एक ऐसी घड़ी उसे प्रेजेन्ट की गयी थी, जिसमें एक ही समय – इंग्लॅण्ड, अमेरिका और भारत का टाइम देखा

जा सकता था!''

चार महीने बाद जानवरों की डाक्टर एक यहूदी लड़की इज़रामेल्डा से भुवन की शादी हो गयी। शादी में सिर्फ़ उसका मित्र और शिष्य रायकृष्ण अपने कुटुंबसहित सम्मिलित हुआ।

भुवन ने बाहर आना-जाना छोड़ दिया। घायल व बीमार जानवर – कुत्तों, गिलहरियों, मोरों, हिरनों की देखभाल में ही उसका सारा समय जाने लगा। और लोगों को तआज्जुब हुआ कि इससे अधिक सुखी दम्पति शहर-भर में नहीं था। खरगोश, गिलहरियों और तोतों की मरहम-पट्टी करने में ही भुवन का सारा समय बीतता था। समय मिलने पर वह इज़रामेल्डा को 'कुमारसंभव' का अंगरेज़ी अनुवाद सुनाता या दोनों मिलकर भारतीय शास्त्रीय संगीत सुनते।

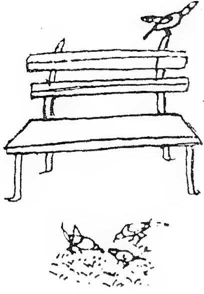
लगभग दो वर्ष में उन्हें एक सुन्दर पुत्र हुआ, जिसका नाम एलायजा रखा गया। लगता था, इससे अधिक सुख मनुष्य को कभी प्राप्त न हुआ होगा।

आठ साल तक इस स्वर्ग में तीनों प्राणी रहे। फिर एक दिन इज़रामेल्डा लू लगने से मर गयी। आठ बरस का एलायजा व भुवन जानवरों की देख रेख वैसे ही करते रहे और भुवन ने बाहर जाना बिलकुल बन्द कर दिया।

धीरे-धीरे भुवन की बातें करनी लोगों ने बन्द कर दीं। तब एक दिन भुवन की मृत्यु का समाचार छपा। बिस्तर में वह अचानक हृदय-गति रुकने से मर गया था। इसके एक वर्ष पहले ही उसका प्रिय शिष्य रायकृष्ण मर चुका था। एलायजा दवाखाना बेचकर इस्रायल चला गया।

डेढ़ साल बाद कान्वेंट की एक टीचर जो भुवन के साथ बहुत प्रगाढ़ थी, अपने बरामदे में बैठी – शॉल बुन रही थी। मैंने हलके से कहा – ''भुवन फ़रिश्ता था। क्या आप उसे बहुत प्यार करती थीं?'' उसने मुँह उठाकर चश्मे में से देखा – ''मैं उसे बहुत प्यार करती थी, पर वह फ़रिश्ता तो नहीं था। फ़रिश्तों में नफ़रत नहीं होती, और वह रात-दिन अपनी मां के प्रति नफ़रत की आग में जल रहा था!'' थोड़ी देर खामोश रह कर वह हंसकर बोली – ''और वह ब्रह्मचर्य जैसे आउटडेटेट आयडियाज से बहुत ही इनफ़्लूएन्स्ड था।''

लुप्त संसार



क्या आप विश्वास करेंगे?

सबसे पहिले इस बात की चर्चा स्व. पं. गोपीनाथ कविराज ने की थी। हिमालय की ऊंचाई पर देवदारु के घने वन में एक 101 प्रकोष्ठों के मठ में वह सूर्योदय के समय पहुंचे और लौटते हुए वह मठ उस जगह पर नहीं था। जी हां, वह मठ उस जगह पर नहीं था।

चार महीने बाद वह मठ दूसरी जगह एक ऊंचाई पर दिखा। हां, वही मठ था। उसके जैसा दूसरा मठ नहीं था। दरवाज़े पर बाहर एक मोटा ताला था, यद्यपि भीतर जटाधारी घूमते दिख रहे थे।

आवाज़ बिलकुल नहीं। सूर्यास्त के समय यहां कुछ चिड़ियों का एक सामूहिक गान-सा सुनायी पड़ता था। फिर एक घण्टे बाद वह बन्द हो जाता था। अटूट नीरवता।

रात को बिजलियां जलती दिखायी देती थीं। लगता था कि बिजली की रौशनी है। स्थिर प्रकाश था गो कभी-कभी शक होता था कि वह तैल के दीपक रहे होंगे। अन्दर या बाहर कहीं भी तारों का कोई भी चिह्न नहीं था।

मैं भारत सरकार की ओर से यह देखने भेजा गया था कि हिमालय पर मनुष्य कितने प्रकार की गन्दगियां छोड़ आता है और उसका वातावरण पर क्या प्रभाव पड़ता है। विशेष रूप से जब से एवरेस्ट पर पहुंचना एक खेल-सा हो गया है, अनेक प्रकार के मानवीय मल वहां बढ़ गये हैं और निश्चित ही इनके निराकरण का उपाय शीघ्रातिशीघ्र वांछित है। नहीं तो जो हाल गंगा का हुआ, वही हिमालय का होगा। सो मैं अपने साथियों का नमचे बाज़ार में डेरा लगवाकर आया था।

मेरा ज़िद्दी बौद्धिकवादी मानस आया था कुछ करने और कर बैठा कुछ और। मैंने बड़े दरवाज़े के मोटे वज़नी ताले को खींचा तो ताला अपने आप खुल गया। बहुत लम्बा अहाता पार करके जिस में तेज़ पीले रंग के फूल खिल रहे थे, जिनकी पंखड़ियों पर काली रेखाएं थीं, मैं मठ की इमारत की ओर बढ़ा। मैंने दूर से ही गिना – नौ सीढ़ियां थीं। पहली सीढ़ी पर पाँव रखने को उठाया ही था कि सीढ़ी और इमारत और सारा दृश्य परिवर्तित हो गया और मैंने अपने को एक बहुत स्वच्छ और सुन्दर प्रपात के सामने देखा, जहां कुछ वृद्ध जिनके केश एकदम सुन्दर रुपहले रंग के थे, सीधे प्रपात में से एक मिट्टी के बड़े सिकोरे में पानी भर-भर कर पी रहे थे। तीन वृद्ध थे। दो तो सिकोरे में पानी भर कर कहीं अदृश्य हो गये। तीसरा

वृद्ध वहीं बैठकर पद्मासन में जमने का प्रयत्न कर रहा था कि मैंने पास जाकर प्रणाम किया।

सूर्योदय हुए को लगभग दो घंटे हो गये थे और ऐसा लगता था कि सोने की चोटियों के बीच घिरे हैं। उसने घनी सफ़ेद भवें जोड़कर आंखों को छोटा कर के देखा और फिर हाथ के इशारे से पूछा –"क्या चाहते हो ?"

"मैं कुछ पूछना चाहता हूँ!"

हाथ के ही इशारे से उसने मुझसे कहा – "पूछो!"

मैंने ढिठाई से पूछा – "इतनी ऊँचाई पर आप लोग कहां रहते हैं ?"

हाथ के ही इशारे से उसने कहा कि वह जहां खड़ा है वहीं सब रहते हैं।

आकाश की ओर उंगली दिखाकर मैंने पूछा – "नंगे आकाश के नीचे!"

उसने हंसकर सिर हिलाया। "रात को तो बरफ़ गिरती है!" थोड़ी देर मुझे टकटकी लगाकर देखने के बाद उसने मेरा हाथ पकड़ा और ले चला। उसके हाथ पकड़ते ही मुझे एक नयी स्फूर्ति का अनुभव हुआ। बहुत चढ़ने के बाद हम लोग एक पठार पर पहुंचे, जहां सुनहरी झील के तट पर एक बहुत ही बड़ा मकान था। उसमें लोग अपने नित्य कृत्य में चुपचाप मग्न थे।

उसने इशारे से पूछा – "तुमने कुछ खाया ? कहां से आये ?" मैंने कहा– "जी, नीचे मेरा तम्बू गड़ा है और पीठ पर स्लीपिंग बॅग व खाने का सामान लेकर हम चलते हैं। मैंने नाश्ता खा लिया है!"

उसने हाथ से दूध निकालने का अभिनय करके पूछा कि क्या मैं दूध पियूँगा ?

उसके बाद हम लोग एक ऐसे स्थान पर पहुंचे, जहां याक़ जैसे किसी पशु का दूध एक वृद्ध एक मिट्टी के गमले में निकाल रहा था। उस वृद्ध ने बड़े स्नेह से एक मिट्टी के कुल्हड़ में मुझे धारोष्ण दूध दिया। स्वाद थोड़ा नमकीन था।

मैंने डरते-डरते कहा – "क्षमा कीजियेगा। यह पूछने का अधिकार मुझे नहीं है कि यहां क्या सभी लोग वृद्ध हैं ?"

मुझे वह उस पठार के एक सिरे पर ले गया और दूर एक एकदम गोल बसी नगरी दिखाकर हाथ के इशारे से कहा – "वहां जाओ!"

झील में अपना मुख देखते हुए मुझे लगा कि मैं लगभग बीस साल का हो गया हूँ। एक भी सफ़ेद बाल नहीं, एक भी झुर्री नहीं और घनी मूंछों के बदले केवल नरम नये बालों की कुछ स्याही ऊपर के होंठ पर। मैंने उन वृद्ध महाशय की ओर देखा – बड़े प्यार से इशारा करके वे बोले – "वहां जाओ।"

वहां आकर, और पहुंचने में तनिक भी कठिनाई न हुई, मैंने एक दूसरी नीली

झील देखी – वह गोलाकार इमारत उसके चारों तरफ़ खड़ी की गयी थी। मैंने कई बहुत ही तरुण स्त्री और पुरुष देखे और झील के गोलाकार तट पर लगभग डेढ़-सौ छोटी-छोटी नावें बंधी थीं। एक बहुत ही तरुण युवक जिसके कानों में बहुत बड़े-बड़े जवाकुसुम के प्रसून खुँसे थे, एक नाव खोल रहा था और एक बहुत लम्बी और लचीली देहवाली तरुणी उसके साथ खड़ी थी। वे दोनों मेरी ही ओर देख रहे थे, इसलिए इशारे से उन्हें रोककर मैं भागकर उनके पास आया। तरुणी का मुख बहुत ही नमकीन था और आकर्षक भी था, पर हमारे समाज में जैसा सौन्दर्य मॉडेल्स में या सौन्दर्य प्रतियोगिता में विजयी स्त्रियों का होता है, वैसा उसका नहीं था। केवल एक मोहकता। उसकी देहयष्टि अवश्य असाधारण थी और वह हमारे समाज की औसत स्त्रियों से अधिक लम्बी थी। मैं उनकी नाव के पास आया तो स्त्री ने बहुत स्नेह से कहा – "चलो प्रात भ्रमण को। चलते हो!" वह हंसी तो मैंने देखा कि उस श्वेत-वसना के जूड़े में भी एक बहुत बड़ा जवाकुसुम लगा है और उसका लम्बा आगे गया तुर्रा हवा में काँप रहा है। उसने हाथ पकड़ कर मुझे नाव पर ले लिया। उसके हाथ काफ़ी गरम थे और उसके स्पर्श के बाद जैसे मेरा शरीर भी काफ़ी गरम हो गया और अपने ऊनी कपड़े उतार देने की मुझे इच्छा होने लगी।

"कुछ पेय दो अतिथि को इन्द्राणी!" उस स्त्री ने एक सुराही में से सन्तरे के रस का-सा कोई पदार्थ एक कुल्हड़ में निकाल कर दिया। उस पेय की शीतलता सह्य थी और स्वाद में वह केवड़े में पीसकर घोले हुए बादाम का सा था। इतना स्वादिष्ट पेय! गो वह ठंढा था, उसे पीकर मेरे कान और गर्दन गरम हो गये।

नाव में से कांच की सी उस झील में नाव का स्पष्ट प्रतिबिम्ब दिखता था। इन्द्राणी को मैंने प्रतिबिम्ब में देखा तो वह हंसी! तरुण के चप्पू चलाने से वह प्रतिबिम्ब मिट गया।

"इस पेय को क्या कहते हैं!" मैंने ऐसे पूछा कि जैसे हम एक-दूसरे को बरसों से जानते हैं।

इस बार तरुण ने तरुणी को मुस्कुरा कर देखा और उल्लसित स्वर में कहा – "हाटक!"

झील में लकीर बनाती हुई नाव झील के गोल तट के सहारे जा रही थी। कमल किनारों पर कुछ थोड़ी-थोड़ी दूर पर खिले हुए थे। तरुणी ने एक नील कमल तोड़कर मुझे दिया। मैंने लेते हुए सिर झुकाकर अभिवादन किया।

तरुणी ने बड़ी घनिष्टता से पूछा –"कैसे आना हुआ?" मैंने उस दिशा को जहां वह वृद्ध महाशय मिले थे इशारे से दिखाया। दोनों बहुत खिलखिला कर हंसे। एक अद्‌भुत रूप से कारण्डव-युगल मिथुन-मग्न था। दोनों ने उसे देखा और मुस्कुरा दिये।

"ओहो इन्हें पिताजी ने भेजा है!" युवक बोला।

मैंने कुछ परेशान-सा होकर पूछा –"वह आपके पिताजी हैं?" तरुण ने सिर हिलाकर 'हाँ' कहा। अब उसने वे डाँड़ रख दिये थे, जिनसे वह नाव खे रहा था। मैंने देखा उस नाव पर एक वीणा भी है। नाव जैसे अब अपने-आप बह रही थी। उस प्रशान्त वातावरण में उन मिथुन-क्लान्त कारण्डव पक्षियों की कल्लोल को छोड़कर और कोई आवाज़ नहीं थी। पीछे छूटे गोलाकार तट पर अन्य युवक-युवतियाँ नावों की रस्सियाँ खोल रहे थे और खिलखिला रहे थे। कहीं दूर से एक मधुर स्त्री-कंठ के गाने की आवाज़ आ रही थी। उस गीत के शब्द समझ में नहीं आते थे। बीच-बीच में केवल कुछ संस्कृत के पहिचाने शब्द समझ में आते थे – 'क्षपान्त', 'अक्लान्त', 'अशान्त', 'ज्योति', 'होमा', 'प्रणय', आदि; राग काफ़ी भैरवी के निकट था। भैरवी ही था कि नहीं यह बताने के लायक मेरा संगीत का ज्ञान नहीं है।

मैंने अपनापन महसूस किया – "क्या आप लोग बता सकते हैं कि आपके पिता ने मुझे यहां क्यों भेजा?"

वह तरुणी पानी की ओर देखते हुई बोली – "आपको किसी वृद्ध ने दूध पिलाया कि नहीं?"

"हां, बहुत सारा दूध पिलाकर उन्होंने मेरी थकावट दूर की!"

तरुणी बहुत ही मोहक स्वर में बोली – "हमारा निवास एक स्थान पर नहीं है। अगर आप यहां से चले जायें और दो घण्टे बाद फिर यहां आयें तो यह झील, यह आवास और हम लोग आपको नहीं मिलेंगे!"

"अगर कोई पृथ्वीवासी हमारे सम्पर्क में आये, तो हम उसका बहुत ही आदर करते हैं। उसे खाने को पौष्टिक भोजन देते हैं और यदि वह हमारे – तरुण व्यक्तियों के बीच आये तो उसे हाटक भी पिलाते हैं। किन्तु कोई भी पृथ्वीवासी हमारे बीच नहीं आ सकता है, क्योंकि यह झीलें यह नगर और ये नागरिक साधारण व्यक्तियों को दृष्टव्य नहीं हैं। यह केवल एकदम स्वच्छ और पारदर्शक आत्मा में प्रतिबिम्बित होते हैं। हम लोगों का अस्तित्व मर्त्य देहवालों के लिए एकदम अदृश्य है। यह तो मेरे और प्रियतम के पिता ने आप पर अतिशय कृपा की कि आपको भेजा। आप करते क्या हैं अपनी पृथ्वी पर?"

मैंने बताया कि पर्यावरण के दूषण से लड़ने में मैं एकदम समर्पित हूं। तरुण ने बहुत उल्लसित स्वर में कहा – "इसीलिए मेरे और इन्द्राणी के बाबा ने कृपा की है आप पर शायद!"

दोबारा तरुणी बोली – "मेरे और प्रियतम के बाबा ऐसे सब व्यक्तियों कि सहायता करते हैं, जो पर्यावरण को शुद्ध करने में लगे हैं!"

तरुण ज़रा उदास मुद्रा में बोला – "पृथ्वी, वायु और प्रकाश जितने दूषित

हो गये हैं, उसे देखते हुए उनके बचने की आशा कम है।''

पक्षी फिर एक समूह-गान कर उठे। प्रसिद्ध संगीतकार अलाउद्दीन खां साहब का पक्षियों के सुबह के गायन का कोरस मैंने सुना था। आपने सुना हो तो कुछ-कुछ अनुमान आप कर सकते हैं।

एकाएक मैंने पूछा –''आपका नाम क्या प्रियतम है?''

तरुण हंसा – ''नाम! हमारे यहां के सब पुरुष प्रियतम कहलाते हैं और स्त्रियां – इन्द्राणी!''

''आप लागों के बच्चे नहीं होते?''

इस बार वह तरुणी हंसकर बोली – ''हमें जीवन-भर में बच्चा तभी होता है, जब पुरुष और स्त्री विलग होना चाहें'' ''मैं कुछ समझा नहीं।'' मैं बोला –

युवक ने दोबारा डाँड़ उठा लिये और गंभीरतापूर्वक बोला – ''हम लोगों में जन्म व मरण दोनों इच्छा से होते हैं। जन्म होता है माता-पिता की इच्छा से और मरण होता है स्वयं व्यक्ति की अपनी इच्छा से!''

एक दूसरी नाव हमारी नाव के पास से निकल गयी। उस पर भी एक तरुण और तरुणी थे, जिन्होंने हाथ उठाकर हमारा अभिवादन किया। हमने भी उत्तर दिया। वह लोग आगे चले गये। मैंने देखा उस गोलाकार झील में अनेक नावें घूम रही थीं और हरेक नाव पर एक तरुण और तरुणी थे।

दूर कोई पर्वतीय पक्षी ज़ोर से चिल्लाया। देवदारु वृक्षों में पवन ने एक लम्बी सांस खींची। एकाएक मैंने जैसे दुष्टतापूर्वक एक अनुचित-सा प्रश्न कर डाला – ''क्या आपमें से कोई अपने पिता के साथ नहीं रहता?''

थोड़ी देर चुप रहकर तरुण बोला – ''रह नहीं सकता, हम लोगों में भोग करने की शक्ति का कभी अन्त नहीं होता। जब किसी को ऐसा लगता है कि उसकी भोग करने की शक्ति क्षीण हो रही है, तो वह हाटक पीकर फिर तरुण हो जाता है। जब भोग करते-करते भोग के सब आयाम और अर्थ स्पष्ट हो जाते हैं, तब वह भोग छोड़ने को प्रस्तुत हो जाता है। यानी कि हाटक पीना बन्द कर देता है। तब उसके केश श्वेत होने आरम्भ होते हैं। जिसके शरीर पर एक भी लक्षण वृद्धत्व का है, वह यहां नहीं रह सकता। यह नगरी केवल तरुणों की है!''

मैं चमत्कृत हो रहा था। ''और यहां मैं किसी बच्चे को भी नहीं देखता!''

तरुणी धीरे-धीरे बोली – ''काम-पीड़ित जगत में माता और प्रेमिका एक ही स्त्री में नहीं रह सकते। स्त्री अकेली सन्तान उत्पन्न नहीं कर सकती, इसलिए आपके संसार में जब वह पुरुष को मोहित कर लेती है, तो पुरुष उसे उसका स्नेह समझता है। किन्तु ...... और वह बहुत गंभीर बनकर बोली – ''यह एक षड्यंत्र है!''

''किन्तु आपके बच्चे कहां हैं? कि नहीं हैं!'' मैंने पूछा। ''धैर्य रखिये'' पुरुष

बोला जब भोग से स्त्री-पुरुष थक जाते हैं, तब वे संयुक्त रूप से एक संकल्प करते हैं – "भोग के त्याग करने का। तब दोनों सन्तान की इच्छा करते हैं और बच्चा होने के बाद स्त्री तब तक के लिए एकान्त में चली जाती है कि जब तक बच्चा बोलने न लगे। वह लोक सबसे ऊंचाई पर है और वहां हमारा या बच्चों के पिता का जाना असंभव है। बच्चे के प्रथम शब्द बोलते ही वे बच्चे एक चौथे लोक में गुरु कोटि के व्यक्तियों के संरक्षण में रख दिये जाते हैं। सप्ताह में एक दिन उनके माता-पिता उनसे मिल सकते हैं! फिर जब वे तरुण हो जाते हैं, तो हम लागों के साथ आकर रह सकते हैं!"

"किन्तु माता-पिता के बिना तो वे निर्मोही और रूखे व्यक्ति बनते होंगे। पिता के स्नेह से जिस विकास की संभावना है, उसे तो आपने अस्वीकृत ही कर दिया।"

"ऐसा आपको लगता है!" स्त्री बोली। "उनका अपने पिता से सप्ताह में एक पूरे दिन सम्पर्क रहता है और उनमें घनिष्टता भी होती है, पर आसक्ति नहीं।"

"याने माता-पिता अपनी सन्तान के साथ चौबीस घण्टे नहीं रह सकते?"

"क्यों नहीं रह सकते! किन्तु ऐसे व्यक्तियों का लोक बहुत नीचे है। वह हमारे लोकों में नहीं आ सकते, गो हम उनके लोकों में जा सकते हैं।"

"और शिशिर ऋतु में जब निरन्तर बर्फ़ गिरती है, झीलें जम जाती हैं और भूमि भी बहुत मोटी बर्फ़ की चादर से ढक जाती है। तब आप लोग क्या करते हैं?"

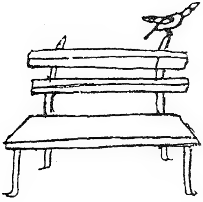
गोलाकार इमारत की ओर उंगली उठाकर तरुण बोला –"भीतर ही रहते हैं, जहां हमारे भण्डार हैं!"

नाव ने बहना लगभग बन्द कर दिया था।

"न जाने कहां से ....." तरुणी ने बोलना आरम्भ ही किया था कि तरुण बोला – "इससे अधिक न हम बता सकते हैं और न आपकी समझ में ही आयेगा!"

मैं वापस वहीं आ गया, जहां से मैंने वृद्ध को पहली बार देखा था। देवदारु के पेड़ कुछ कह रहे थे। सब लुप्त हो गया था।

काश, पार्थ आता !



पूत के पाँव पालने में ही पहिचाने जाते हैं। शायद किसी हद तक। स्कूल में ही मालूम हो जाता है कि सुपुत्र आगे क्या करनेवाले हैं। पढ़ाई में तो मैं एकदम रामभरोसे था, मगर समय नष्ट करना यदि कोई कला है, तो उसका मुझसे बड़ा आचार्य कभी ही शायद कोई हुआ हो। स्कूल के ही बग़ीचे में एक छोटे- से हौज़ में घंटों मछलियों का विलास देखना या ठीक उसके ऊपर खड़े बहुत बड़े केवड़े के पेड़ के भुट्टे के से फल को बावजूद कांटों से संघर्ष करने के तोड़कर पानी में भिगोकर रूमाल में बांधकर रखना। कभी विप्लववादी मूड में अपनी ही कक्षा के पीछे जो सायकिल स्टॅन्ड था और जिसमें सब लड़के अपनी-अपनी सायकिलें रखते थे, उसमें जाकर सायकिलों की हवा निकालना।

फ़ेल होने से बच जाने का कारण शायद यह रहा हो कि साल की शुरूआत में ही क्लास-टीचर को ही घर पर ट्यूटर रख लिया जाता था। गुरुदेव जब घर पर पढ़ाने आते थे, तो माँ उन्हें गरम-गरम कचौरी या उड़द के बड़े खिलाती थीं और सर्दियों में गाजर का हलुवा। उन्हें मालूम था कि दधीचि की अस्थि से ही इन्द्र वज्र बनाये, तो जीतने की आशा है। सो दधीचि का सन्मान करना ही पुत्र को विजयी बनाने का एकमात्र मार्ग है। दधीचि की सहृदयता की जांच भी बहुत साधारण थी। उन्हें वज्र बनाने के लिए अस्थि नहीं केवल वार्षिक परीक्षा का प्रश्न-पत्र देना था।

नये हेडमास्टर साहब, जो देश की शिक्षा के स्तर को उठाने का बीड़ा लेकर आये थे, जब सब के प्रश्न-पत्र स्वयं लेकर उन्हें बदलने लगे और यहां तक कि मालूम करके कि किन विशेष अध्यायों को क्लास में परीक्षा के लिए सबसे महत्त्वपूर्ण बताया है, उन विषयों पर सब प्रश्नों को प्रश्न-पत्र में से हटाने लगे, तो लगा कि प्रलय दूर नहीं है। गुरुजी ने बताया था कि अफ्रीका पर प्रश्न अवश्य आयेगा और प्रश्न-पत्र में मीलों तक अफ्रीका का नाम नहीं। गुरुजी ने एकाकी नियम के प्रश्नों पर जोर दिया था और प्रश्न-पत्र में एकाकी नियम का एक भी सवाल नहीं। यही नहीं बल्कि पहले होनेवाले प्रश्न-पत्रों के कारण जब लड़कों को यह विश्वास हो जाता था कि गुरुजी के बताये हुए प्रश्नों को छोड़ देना ही बुद्धिमानी है, तब हिन्दी का परचा हूबहू वैसा ही निकलता था, जैसा कि बताया गया था। 'गहरी है नदिया नाव पुरानी' वाली इस स्थिति में वैतरणी पार करने के लिए जब नये उपाय की खोज की जा रही थी, तब मेरे जीवन में पार्थ आया।

उसके नाना हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सभापति थे और अन्दर की कुछ गड़बड़ मालूम होने पर उन्होंने इस्तीफ़ा दे दिया था। जज घूस लेता है, मालूम होने पर वकालत छोड़ दी थी और मेडिकल कॉलेज की एक लड़की से छेड़छाड़ करते एक बीस-बाईस बरस के गुंडे को ऐसा करारा झापड़ मारा था कि वह पृथ्वी पर गिरकर खून उगलने लगा था।

पार्थ के पिता जिमनाशियम में बिना किसी वेतन के युवकों को कसरत सिखाते थे। उसके पहिले वह ज़िला कांग्रेस कमिटी के अध्यक्ष थे। माता और पिता दोनों की ओर से बलवान घरों का बच्चा था पार्थ। मगर जब उसकी लम्बी दुबली देह खेलने के मैदान में लचकती दिखायी देती थी, तो वह कोई प्रसिद्ध कत्थक नर्तक दिखायी देता था। मैंने ही उसका नाम माधुरी रख दिया था। उन दिनों माधुरी नाम की एक अभिनेत्री बहुत लोकप्रिय थी और लड़कियों के नाम से लड़कों को बुलाना स्कूल में सबसे चिढ़ानेवाली प्रक्रिया थी। मगर पार्थ यद्यपि मुझसे बहुत अधिक बलवान था, फिर भी वह चिढ़ने के बदले केवल हँस देता था।

तो जब गुरुजी के बताये प्रश्नों में से एक भी प्रश्न परचे में न दिखायी पड़ा और पढ़ी हुई इस बात पर विश्वास आ गया कि पृथ्वी घूम रही है, तब कितने ही विचार मन में आने लगे। गुरुजी ऐसे विश्वासघाती तो नहीं मालूम होते। माँ को कितनी आस्था थी गुरुजी की सहृदयता पर। काश उन प्रश्नों के अलावा किताब को एक बार भी मैंने पढ़ा होता। अब फ़ेल होने में कोई कसर न रही। बैठा-बैठा सामने दीवार पर एक बहुत बड़े कीड़े पर ताक लगाये छिपकली को देखता रहा। कीड़ा तो चला जा रहा था, पर छिपकली अचल-अस्थिर होकर उसे देख रही थी। ऐसी स्थिरता होनी चाहिये लक्ष्य पर पहुंचने के लिए। इतने में मेरे सामने बैठे लड़के ने कुर्सी की पीठ पर हाथ रख दिया। मैंने देखा पार्थ था।

ओह, लड़का हो तो पार्थ जैसा। लॉन्ग जम्प में नम्बर एक, फ़ुटबाल की टीम़ का कप्तान और गणित में भी नम्बर एक। मगर फिर मन को समझाया कि ड्राइंग में तो मेरे ही अंक सबसे अधिक आते हैं। मगर जैसा कि किसी ने कहा है कि मन किसी का दोस्त नहीं। मन ने कहा कि ड्राइंग में भी स्टिल लाइफ़ याने मेज़ पर रखे मर्तबान या खिड़की पर रखे लोटे की ड्राइंग में तो तुम खराब ही हो। जहां धैर्य का प्रश्न आता है, वहीं तुम कमजोर मालूम होते हो। मन में बार-बार एक ही लाइन आने लगी - "धीरज का फल मीठा होता है।" सुना कई बार था पर आज इस बात का सत्य शायद सबसे अधिक महसूस किया। मुझे लगा पार्थ ने जैसे जानबूझ कर पीछे मेरी डेस्क पर हाथ रख दिया। उसकी क़मीज के कफ़ पर लिखा था "सायकिल स्टॅन्ड के गेट पर" थोड़ी देर मैं कुछ समझा नहीं। फिर लघुशंका की

निवृत्ति के बहाने बाहर जाते हुए मैंने सायकल स्टॅन्ड के गेट पर लगा एक एक काग़ज पाया, जिस पर उस दिन के प्रश्न-पत्र के सब प्रश्नों के उत्तर लगे थे। मालूम नहीं उसी लघुशंका की निवृत्ति के बहाने पार्थ उन्हें कब लगा गया था।

मैं पास हो गया और पार्थ का एक बहुत बड़ा प्रशंसक बन गया। दोस्त हो जाने के बाद मेरे जीवन पर पार्थ का प्रभाव पड़ने लगा। उसके साथ मैं भी राष्ट्रीय भावना से प्रेरित प्रभातफेरियों में निकलने लगा । उसने मुझे किताबें देनी भी शुरू कीं। वे किताबें ज़्यादातर क्रान्तिकारियों और देशभक्तों की जीवनियां थीं। एक किताब उसने मुझे बहुत आग्रहपूर्वक दी, जिसका नाम बाद के जीवन में भी मैंने कई बार सुना था, गो उसके लेखक का नाम मैं भूल गया हूं। उसका नाम था शायद– ''फ़िजी द्वीप में मेरे पच्चीस वर्ष'। फ़िजी द्वीप में भारतीय कुलियों के अत्यन्त भयंकर जीवन के बारे में वह थी। और पढ़ने-लिखने में तो मेरी प्रगति इतनी ही हुई कि मैं हर कक्षा में पास होने लगा, मगर मैं भगतसिंह के जीवन पर गाना गाने लगा–

कोरट में उसको ले गये, हाकिम से बोला वह -
जो करना है तू कर ले हाज़िर है भगतसिंह ।

स्कूल के बग़ीचे में बैठकर हम लोग भारत को आज़ाद कराने के बारे में बहस करने लगे। लड़कियों में मेरी दिलचस्पी शुरू हो गयी थी, मगर उसने समझाया कि लड़की आने पर विवाह की संभावना है और विवाह होने के बाद बाल-बच्चों को देखने में ही जीवन नष्ट हो जाता है।

संक्षेप में एक खुश लापरवाह लड़के के बदले मैं देशभक्त बन गया। साइमन कमिशन के विरोध में लाला लाजपतराय ने लाठी खायी और उसके विरोध में सरकारी संस्थाओं में विरोध सभाएं हुईं, जिनके संयोजन में पार्थ ने एक बहुत बड़ा हिस्सा लिया। जब लाजपतराय की मृत्यु हो गयी, तो स्कूल के हॉल में लगे इंग्लैण्ड के राजा और रानी के चित्रों को तोड़ने के अपराध में पार्थ को निकाल दिया गया।

मेरे पिता का तबादला हो गया और शहर छोड़कर हमें नये शहर में जाना पड़ा। जो कुछ अच्छी बातें सीखनी मैंने शुरू की थीं, धीरे-धीरे वे भुला दी गयीं। सत्य तो यह है कि मैं पार्थ को भी भूल ही गया।

लगभग दस साल बाद पिता का तबादला वापस पार्थ के शहर में हो गया और मालूम हुआ कि पार्थ शहर के कॉलिज में फ़िज़िक्स विभाग का अध्यक्ष है। उसके प्रिंसिपल बनने की संभावना भी बहुत थी। मैं उससे मिलने पहुंचा। आफ़िस के बाहर आकर उसने मेरा हार्दिक स्वागत किया। अन्दर ले जाकर उसने चाय और नाश्ता मंगवाया। हम दोनों ने साथ चाय पी और चूंकि उसे लेक्चर में जाना था, घर पर आने का निमन्त्रण देकर मैंने विदा ली।

दो महीने बीत गये और वह नहीं आया, तो स्वयं उससे मिलने मैं चला गया।

पता चला कि वह 30 दिन की छुट्टी पर है। फिर वह कॉलेज में वापस नहीं आया और सुना कि उसने इस्तीफ़ा दे दिया।

गर्मियों की छुट्टियां शुरू हो गयी थीं और जिस कॉलेज से उसने इस्तीफ़ा दिया था, उसमें उसी की जगह पर नये प्रोफ़ेसर की नियुक्ति के लिए जब विज्ञापन निकला, तो मैंने निश्चय किया कि जो जगह उसने छोड़ी है, उस पर मैं नहीं जाऊंगा। प्रिंसिपल हमारे घर आते थे और उन्होंने बहुत आग्रह किया कि मैं ही उस जगह पर आऊं। न मालूम क्यों मुझे यह विश्वासघात लगा। प्रिंसिपल ने कहा कि अगर पार्थ स्वयं यह आग्रह करे कि मैं उसकी जगह आ जाऊं, तब तो मैं स्वीकार कर लूंगा? मेरी सहमति पर प्रिंसिपल ने दूसरे दिन सुबह का खाना खाने का निमंत्रण मुझे दिया।

दूसरे दिन खाने पर पहुंचा तो दंग रह गया। पार्थ भी निमंत्रित था। मोटा हो गया था और उसने चश्मा लगाना शुरू कर दिया था। वह कहां चला गया था? उसने इस्तीफ़ा क्यों दे दिया था? क्या वह वापस शहर में रहने आ रहा है? वह केवल हंसता रहा, जैसे यह प्रश्न नहीं कोई विनोद है। हम लोग खाने पर बैठे। मुझे यह देखकर खुशी हुई कि उसने डटकर खाना खाया और मुझे ठीक से न खाने का उलाहना दिया। खाना-वाना खाकर हम लोग बैठे कि प्रिंसिपल ने कहा – "पार्थ, अपनी जगह पर दोबारा नियुक्त नहीं किया जा सकता, क्योंकि कॉलेज का क़ानून यह है कि एक बार जिस जगह से इस्तीफ़ा दे दिया है, दोबारा उसी खाली जगह पर उसी व्यक्ति की नियुक्ति नहीं हो सकती। हां, तुम एक बार यदि उस जगह पर छह महीने भी काम कर लो, तभी दोबारा उसकी नियुक्ति हो सकती है। पार्थ बोला - "मुझे इस कॉलेज में फिर आना है। प्रिंसिपल साहब भी मुझे वापिस बुलाना चाहते हैं, मगर कॉलेज के क़ानून के खिलाफ़ वह कुछ नहीं कर सकते। इसलिए अगर मेरी जगह तूने काम कर लिया, तो तुझे दो साल बाद सीनियर बना देंगे और प्रिंसिपल साहब कहते हैं कि मेरी जगह वापस मुझे मिल जायेगी। सीनियर जगह खाली होने में दो साल लगेंगे!"

"तो उसी सीनियर जगह पर तुझे नियुक्त करके मुझे अपनी जगह पर ही रहने देने का वायदा हो, तो मैं तेरी पुरानी जगह पर आ सकता हूं।" बहुत बहस-मुबाहसे के बाद तय पाया कि ठीक है, मैं अभी उसकी जगह पर काम करना स्वीकार कर लूं। नहीं तो किसी और को नियुक्त करना पड़ेगा। और दो साल बाद पार्थ सीनियर पोस्ट पर आ जायेगा। दो साल वह रिसर्च करेगा।

मैं नियुक्त हो गया और पार्थ से फिर सम्पर्क छूट गया। एक वर्ष तक न मुझे उसका कुछ पता चला और न प्रिंसिपल को। लगभग आठ महीने बाद मुझे कमर में असह्य दर्द शुरू हुआ। मालूम हुआ कि मेरुदण्ड का एक छल्ला खिसक गया है, जिसे अंगरेज़ी में 'स्लिप्ड डिस्क' कहते हैं। कॉलेज से लम्बी छुट्टी लेनी पड़ी।

मैं भाई के साथ था। मकान छोटा पड़ रहा था और नये मकान की तलाश रुक गयी थी।

जब दो महीने तक मेरा दर्द ठीक न हुआ, तो भाई का धैर्य छूटने लगा। दो कमरे और एक रसोई थी और बाहर के कमरे में हमेशा मैं बिस्तर पर पड़ा रहता था। रोज़ किसी न किसी बुजुर्ग को भाई साहब ले आते थे, जो मुझे लेक्चर पिलाता था कि मर्द बनो ! एक बार उठने का इरादा कर लो तो कौन रोक सकता है ? फ़ौज में तो ऐसा दर्द होने पर भी सिपाही अपना वज़नी सामान उठाकर बढ़ता ही रहता है। रोज़-रोज़ लोगों के ऐसे लेक्चर सुन-सुन कर तंग आने के कारण मैंने सचमुच वहां से जाने का कार्यक्रम बना लिया। एक दिन भाभी के पिता का एक कार्ड मैंने पढ़ा, जिसमें लिखा था कि आखिर तुम्हारे देवर करना क्या चाहते हैं ? लेटे-लेटे ही ट्यूशन ले लें, नहीं तो इसका कोई अन्त नहीं।

दिन-भर मैं सोचता रहा कि चाहे सड़क पर पेड़ के नीचे रहना पड़े, मैं भाई का घर छोड़ दूंगा। घर असल में पिताजी का ही था, मगर वापस आने के छह महीने बाद जब पिताजी की पेंशन हो गयी, तो उसी के साथ वह दूसरे दर्जे के नागरिक हो गये। मां भी दबी-दबी रहने लगीं और पिताजी के क्षुब्ध होने पर बड़े लड़के के तीव्र मोह से ग्रस्त उसकी ही तरफ़दारी करने लगीं। पिताजी बहुत तटस्थ अनासक्त व्यक्ति थे। पत्नी को इतना मोहग्रस्त देखकर उनका क्षोभ और भी बढ़ जाता था। शाम को एकाएक पार्थ आ गया। कहां था नहीं बताया। शहर में था ? नहीं। फिर कहां था ? बताने की ज़रूरत होने पर बतायेगा। पिताजी मेरे पास बैठे थे, जब वह आया। समस्या उसे बतायी गयी। उसने हंसकर कहा - "जब मकान पिताजी का है, तो दूसरे मकान में जाना कायरता होगी।" बहुत देर तक मैं उसे समझाने की कोशिश करता रहा कि जब बात यहां तक आ गयी है कि भाभी के पिता कार्ड में लिखते हैं कि मैं लेटे-लेटे ट्यूशन करूं, तो इससे बड़े अपमान की कल्पना भी नहीं की जा सकती। वह हंसकर बात को हलका बनाता रहा। मैंने कहा – "अभी तो मैं पांच मिनट से अधिक खड़ा भी नहीं रह सकता।" मैंने कॉलेज की लॅबॉरेटरी से तीव्र विष पोटॅशियम सायनाइड की मांग इस बिना पर की कि जब अपमान असह्य हो जाये तो मैं उसे खा सकूं।" आत्मघात करने से मुझे रोकने के बदले पार्थ ने इस विचार की खूब तारीफ़ की। हंसकर बोला - "ठीक कहता है तू! अधीन होकर बुरा है जीना, है मरना अच्छा स्वतंत्र होकर। जिस चीज़ का कोई इलाज नहीं, उसके लिए कोई इलाज तो ढूंढना ही पड़ेगा।" दूसरे दिन एक बहुत मोटे कागज़ में किसी चितकबरी चीज़ का एक बहुत बड़ा डला एक कसकर बन्द शीशी में रख कर मुझे वह दे गया। बहुत गंभीर होकर उसने चेतावनी दी - "खबरदार ! इतना सायनाइड

तो सारे शहर को समाप्त कर सकता है। किसी बच्चे के हाथ न पड़ जाये।''

मैंने बहुत शान्त सुखद मूड में वह लेकर अपने तकिये के नीचे छिपा दिया। अपमानों का सिलसिला फिर शुरू हो गया। भाई को कहीं दौरे पर जाना था। जाते हुए बावजूद दर्द के मैं उनका आलिंगन करने को उठा, मगर वह बिना मेरी तरफ़ देखे चले गये। उनके जाने के बाद खाने में तकलीफ़ होने लगी। भाभी रोटी तो देती थी, पर दाल और शाक बहुत कम। खर्च पिताजी के पैसों से चलता था और खाना बनाती भी मां थीं, पर बड़े लड़के से कुछ भी कहने की उनकी हिम्मत न थी। मैं रोज़ रात को तकिये के नीचे का सायनाइड टटोल कर देख लेता और सोचता - ''मेरे मरने के बाद पिताजी और मां का क्या हाल होगा।'' एक दिन पिताजी ने मेरा पक्ष लेकर कहा – ''जब डाक्टर कहता है कि आराम करना ज़रूरी है, तो वह क्या कर सकता है।'' भाई एकदम से बरस पड़े - ''आपने ही उसे अपाहिज बनाया है। सिर कट जाने पर लोगों के धड़ ही लड़ते रहते हैं। आपको मालूम है - सायकॉलजी ने यह साबित कर दिया है कि दिमाग़ फोड़े, सूजन सब कुछ पैदा कर सकता है।'' पिताजी अपना-सा मुंह लेकर रह गये।

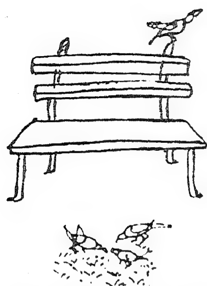
मैं रात-भर सो नहीं सका। काश, पार्थ आता। उसने कहा था कि वह जल्दी आयेगा। मगर आजकल उसका पता कहां रहता है! हमेशा हंसमुख! हमेशा मुस्तैद! कितना बौद्धिक! कितना सजग! आज आयेगा तो मैं उससे कहूंगा कि एक कमरे का इन्तज़ाम कर दे। शायद मेरी जगह पर या असल मायने में अपनी ही जगह पर वह वापस नियुक्त हो सके। मुझे इस्तीफ़ा दे देना चाहिये। मगर मेरे इस्तीफ़े से तो भाई साहब एकदम आपे के बाहर हो जायेंगे। फिर तो यह अपमान और बढ़ जायेगा। मगर मुझे क्या, मैंने तो इस जीवन का अन्त कर देने का पक्का निश्चय कर लिया है।

न मालूम मैं कब सो गया। अख़बारवाला जब पेपर लाया तब मैं जगा। सात बज रहे थे सुबह के। यांत्रिक रूप से हाथ बढ़ाकर पेपर ले लिया। खोलते ही जैसे मेरे ऊपर बिजली गिरी।

अंगरेज़ रेज़िडेन्ट पर बम फेंकनेवालों का पता लग गया है। तीन व्यक्ति गिरफ्तार हुए - एक प्रोफ़ेसर पार्थसारथी और उनके दो शिष्य शिबू सिनहा और सुरेन्द्र लाहड़ी। प्रोफ़ेसर पार्थसारथी कॉलेज से इस्तीफ़ा देकर रेजिडेन्ट के पीछे-पीछे मसूरी गये थे। गर्मियों में रेज़िडेन्ट हमेशा मसूरी जाते हैं। शायद तीनों को फांसी होगी।

रास्ता आगे नहीं था। मैंने किसी से कुछ कहे बिना तकिये के नीचे सायनाइड निकाल कर खा लिया। शाम को छह बजे आंख खुली, तब समझ में आया कि पार्थ ने जो दिया था, वह सायनाइड नहीं था।

छुट्टी



शिवजी के मंदिर में शंकरजी के ऊपर जब तांबे का नया कलश लटका कर नन्दू घर आया, तो उसे पूर्ण विश्वास था कि अपनी मां को उसने मौत के मुँह से निकाल लिया है। मगर जब चार दिन की बेहोशी के बाद भी चमत्कारिक रूप से उसकी मां ज़िन्दा रहीं, तो उसने शिवजी से प्रार्थना की कि उसकी मां जल्दी-से-जल्दी मर जायें। संयोग कि चार घण्टे में उसकी माँ के प्राण निकल गये और जो नन्दू माँ के बिना जीने की कल्पना भी नहीं कर सकता था, उसका भाव बिलकुल बदल गया। माँ को श्मशान ले जाने की जल्दी में जब उसके बड़े भाई पिता को भी पीछे घर पर ही छोड़ गये थे, और जब उन अत्यन्त साहसी पिता को उसने बालकों की तरह अकेला रोता देखा, तो उन्हें लेकर वह श्मशान पहुंचा। चिता जलायी ही जानेवाली थी। घर लौटते हुए उसने दृढ़ संकल्प कर लिया कि वह पिता के साथ रहकर उन्हें माँ का अभाव महसूस नहीं होने देगा।

जब कॉलेजों को खुले चार महीने बीत गये और उसने दाखिला न लिया, व प्रवेश-पत्र भी न भरा, तो बड़ौदा की उसकी बहिन ने उसे बड़ौदा बुला लिया।

सितम्बर की वह सुबह अभी भी उसे याद है। बड़ौदा कॉलेज के पास ही एक दो-मंज़िले मकान के नीचे की मंज़िल में वे रहते थे। मकान म्यूज़िक स्कूल में गाना सिखानेवाले एक कक्कड़ साहब का था, जो खुद ऊपर की मंज़िल मे अपनी इकलौती लड़की के साथ रहते थे। कम्पाउंड बहुत बड़ा था। उसके बहनोई रेवेन्यू ऑफ़िस में कोई अफ़सर थे और यद्यपि उनकी तनख़्वाह केवल तीन सौ थी, फिर भी ऊपर की कमाई तीन हज़ार के ऊपर थी।

बाहर सोफ़े पर एक छरहरे बदनवाली लड़की बैठी थी, जो तांगे के रुकते ही यह कहते हुए भागी - "वीणाताई, वीणाताई। आपकी बहन आयी हैं।" वीणा नन्दू की बहन का नाम था।

कन्धों तक लहराते उस लड़की के बाल अन्दर भागते हुए पीछे को हवा में लहरा गये।

बिस्तर और सूटकेस उतार कर उसने तांगेवाले को पैसे दिये और तांगा चला गया।

वर्षान्त के सफ़ेद बादल साफ़ नीले आसमान में हवा में दौड़ रहे थे। उस लम्बे-चौड़े कम्पाउंड में कोरिष्ठा नाम के नारंगी फूलों की जंगली झाड़ियां फूलों से लदी

थीं। वीणा के आते ही नन्दू ने उसके पाँव छुए, तो पीठ थपथपाते-थपथपाते वह बोली – "आ गये! बहुत अच्छा हुआ। अजंता तुम्हारे लम्बे-लम्बे काकुलों की वजह से तुम्हें मेरी बहन समझी थी। अजन्ता, यह मेरा भाई नन्द कुमार है। हिन्दी में कविता करता है और पंत व निराला की स्टाइल में लम्बे बाल रखता है। यह अजन्ता है, कक्कड़ साहब की लड़की।"

वही पहिला परिचय था। नन्दू तो जैसे दूसरे लोक में पहुंच गया। अजन्ता ऊपर रहने के बावजूद हमेशा वीणा के ही साथ रहती थी। कक्कड़ साहब जिस स्कूल में संगीत सिखाते थे, उसी स्कूल की नवीं कक्षा में वह पढ़ती थी। कक्कड़ साहब की पत्नी उत्तर प्रदेश की विधायिका होने के कारण महीनों बाहर रहती थीं।

नन्दू अपने बहनोई की सायकिल पर नौ बजे नाश्ता करके जब कॉलेज के लिए निकलता था, अजन्ता बस में जा चुकी होती थी। जाने के पहले नन्दू के पास आकर नमस्कार करके कहती थी – "अच्छा नन्दूजी शाम को मिलेंगे!" और फिर पीछे मुड़कर तीन-चार बार हंसती हुई हाथ हिलाती वह बस में बैठ जाती थी! और बस देखते-देखते अदृश्य हो जाती थी। तीसरे-चौथे दिन से वह उसकी सायकिल साफ़ करके रखती थी और छुट्टी के दिन तो तेल लगाकर खूब ही चमका देती थी। नन्दू तो जैसे स्वर्ग में था। अपने घर में वह अपने भाई की सायकिल साफ़ करता था। अजन्ता इस कर्तव्य को ऐसा समझती थी कि न करने पर जैसे उसे कोई कड़ा दण्ड देनेवाला था। बहुत ही कृतज्ञ स्वर में जब नन्दू ने वीणा को यह बताया, तो वीणा ने नाक सिकोड़ कर कहा - "इस उम्र में हरेक लड़की ऐसा ही करती है, तुम अपनी पढ़ाई में मन लगाओ!" नन्दू चिढ़ कर कहता था –" ताई, अच्छा तुम भी इस उम्र में ऐसा ही करती थीं? किस उम्र से लड़कियां ऐसा करना बन्द कर देती हैं?" तो वीणा बहुत सख़्त गंभीर मुँह बनाकर दूर कहीं देखने लगती थीं।

शाम को वीणा, नन्दू और अजन्ता घूमने जाते थे, और बड़ौदा के बड़े बाग के जॅपनीज़ गार्डन में दूब पर बैठकर गपशप करते थे। अजन्ता हमेशा भोलेपन से कहती थी - "ताई, नन्दू का सा हॅन्डसम कोई लड़का नहीं होगा कॉलेज में!" नन्दू के कान गरम हो जाते थे। सर्दियों में बड़े दिनों की छुट्टी में यह लोग सवेरे बरामदे में साथ-साथ चाय पीकर बाग़ मे घूमने जाते थे। अजन्ता लॉपचू नामक बहुत ही महंगी चाय केतली में बनाकर ट्रे में नीचे लाती थी। नन्दू ने एक बार ज़िक्र किया था कि उसने एक बंगाली डॉक्टर के यहाँ लॉपचू चाय पी थी। आहा! चाय है तो लॉपचू! लिप्टन का ग्रीन लेबल तो उसके सामने कपड़े धोकर निकला हुआ पानी जैसा लगता है। दूसरे दिन ही अजन्ता बड़ी केतली में जो हरे मखमल की टोपी से

ढकी थी, चाय लेकर बरामदे में आकर पुकारने लगी – "ताई, ताई , देखिये क्या लायी हूँ!" और उसी दिन से यह क्रम चल पड़ा। जब नन्दू ने कहा - "इतनी महँगी चाय आपने क्यों खरीदी? कक्कड़ साहब प्रिंसिपल बन गये हैं क्या?" तो अजन्ता ने हँसकर कहा – "यह तो मैंने अपने जमा किये हुए पैसों से खरीदी है। आप मुझे समझते क्या हैं?"

नन्दू के लिए मां की याद कोशिश करके पानेवाली चीज़ रह गयी। कैशोर्य की कोमलता व शैशव की सरलता के साथ-साथ इसमें कहीं नवागत यौवन का षड्यंत्र भी देखा जा सकता था। स्कूल के लिए जल्दी तैयार होकर अजन्ता नीचे आती थी और मोढ़े पर बिठाकर नन्दू के बाल बहुत मेहनत से बनाती थी - "छीः छीः कितना तेल लगाते हैं आप? बाल चिपक जाते हैं। अब यह बाल बिगाड़ियेगा नहीं। आपको बाल बनाने भी आते हैं? अच्छा सुना है कॉलेज में एक लड़की को आप बहुत पसन्द करते हैं - चंदा बोस! नहीं? करते हैं। करते हैं। उसे यह बाल कैसे लगे, शाम को बताइयेगा और फिर वीणा को आवाज़ देकर वह कहती – "ताई, देखियेगा कि नन्दूजी अपने बाल न बिगाड़ लें।" और फिर धीमी आवाज़ में कहती थी - "नहीं तो चंदा बोस पर असर नहीं पड़ेगा।"

वीणा यह सब ऐसे लेती थी कि जैसे यह सब बच्चों का एक खेल है। कक्कड़ साहब इस भाव से मुस्काते थे कि जैसे अच्छी जोड़ी है। कभी-कभी नन्दू उनकी इस मौन स्वीकृति के लिए उनका बहुत कृतज्ञ होता था। मगर वीणा के पति बालकृष्ण साठे बहुत ही नाराज़ थे और जैसे-जैसे अजन्ता का चुलबुलापन बढ़ता जाता था, वैसे-वैसे नन्दू के प्रति किसी अव्यक्त घृणा से वह क्रमशः अधिक-से-अधिक अग्नि से दहकते जाते थे। नन्दू को, वीणा को या अजन्ता को इसका एहसास नहीं हुआ था।

बालकृष्ण साठे का माहवारी खर्च बहुत था। एक रसोइया था और दो नौकर। बाक़ायदा बढ़िया क्रॉकरी में कढ़ाई किये हुए मेज़पोश पर सुबह का नाश्ता, शाम की चाय और रात का खाना होता था। सुबह तो वीणा को छोड़कर कभी कोई नहीं होता था। छुट्टी के दिन साठे साहब की मामी आ जाती थीं और भरी हुई भिंडी या अंडे की रसदार सब्जी बनती थी सुबह के खाने में। उन मोटी और गोरी मामी को मामा मोटर में छोड़ जाते थे और फिर दिन भर साठे साहब किसी और को तवज्जो नहीं देते थे। वह मामी बहुत नफ़ासत से उठती-बैठती थीं और साठे साहब का सारा रौब-दाब उस दिन मामी की सेवा में रहता था।

अजन्ता उस दिन बरामदे में मोढ़े पर बैठकर नन्दू से हिन्दी पढ़ती थी। बीच-

बीच में नन्दू अपनी कविताएँ भी सुनाता था। कभी साठे साहब उधर से निकलते थे तो कहते थे - ''यह हिन्दी पढ़ाई जा रही है। वल्लाह, लगता है, कविजी अपनी ही कविता की ब्यूटी बताने में लगे हैं।'' और फिर कक्कड़ साहब कहीं से बोल पड़ते थे- ''सुना साठे साहब, नंदकुमार को हिन्दी में हाइएस्ट मार्क्स मिलते हैं।'' तो साठे साहब जैसे हँसकर होंठ दबाकर कहते थे - ''हाँ, हिन्दी में ही मिलेंगे। राष्ट्रभाषा ज़्यादा अच्छी जानते हैं मिस्टर नन्द कुमार।'' तो नन्दू तेज़ आवाज़ में कहता था - ''इंटर में अंगरेज़ी में मेरे मार्क्स यू. पी. बोर्ड में सबसे ज़्यादा थे।'' साठे साहब एकदम बिगड़ कर कहते थे – ''ज़बान लड़ाते हो ? हमने तो साहबज़ादे को बी. ए. में इसलिए ही एडमिट करवाया था कि थर्ड डिवीजन में भी अगर बी. ए. कर लेंगे, तो अपने ही ऑफिस में क्लार्क बनवा देंगे, मगर यह तो ट्यूटरपने में ही इतने बिज़ी हैं कि इन्हें स्टडी करने का टाइम कहाँ ?'' तो अजन्ता ऊँची आवाज़ में कहती – ''भाऊ, आपको पसन्द नहीं तो नन्दूजी से हम अपनी डिफ़ीकल्टीज़ न पूछा करेंगे।'' और वह किताब उठा कर चली जाती। तो साठे साहब बदली हुई आवाज़ में सीढ़ियों पर खड़े कक्कड़ साहब को समझाने लगते – ''देखा आपने ! नन्दू से कही हर बात को अजन्ता अपने ऊपर लेती है। दिस इज़ द लिमिट!'' तो कक्कड़ साहब कहते - ''अजन्ता कहती है कि नन्दू इतना अच्छा एक्सप्लेन करता है कि स्कूल के मास्टर साहब भी नहीं कर सकते।'' तो साठे साहब नकली हंसी हँसकर कहते – ''हिन्दी के मास्टर भी हो गये, तो पेट तो किसी तरह भर ही लेंगे।''

नन्दू रात-दिन प्रताड़ित होने पर भी इतना सुखी कभी नहीं था। मकान कक्कड़ साहब का ही होने की वजह से साठे साहब को थोड़ी दाब खानी पड़ती थी। और फिर साठे साहब की मामी भी कभी-कभी बीच में बोलती थीं – ''बाळू! थोड़ा हंस लेने दो बच्चों को। तुम तो चाहते हो कि सब तुम्हारी तरह बुढ्ढे हो जायें।'' और आठ बजे जब खाना खाने के बाद मामी चली जातीं, तो साठे साहब थोड़ी देर हारमोनियम पर भजन गाते - ''प्रभु, मोरे अवगुन चित न धरो!'' और सो जाते, मगर दूसरे दिन तक वे शान्त रहते।

वींणा का दिल अजन्ता से बहला रहता, क्योंकि साठे साहब की बात वीणा से कम ही होती थी। मगर वीणा को अजन्ता से या अजन्ता को वीणा से अलग नहीं किया जा सकता, इस बात के बारे में दो मत नहीं हो सकते थे। और जहाँ अजन्ता होगी वहां नन्दू न हो, यह असंभव था।

जब मिसेज़ कक्कड़ दो महीने को आती थीं या चार दिन को आती थीं, तो वीणा की शक्ल ही बदल जाती थी। शादी के पहिले से मिसेज़ कक्कड़ वीणा की

गहरी दोस्त थीं और इस मकान का नीचे का हिस्सा ही साठे साहब को वीणा की मिसेज़ कक्कड़ के साथ दोस्ती के कारण मिला था। मिसेज़ कक्कड़ एक बहुत सम्पन्न व प्रतिष्ठित परिवार की थीं।

सो जब वह आतीं तो वीणा उनकी पसन्द का फूलगोभी डाल कर भात बनाती। मिसेज़ कक्कड़ खुबानी की खीर बनातीं और नन्दू सायकिल पर टाँग कर ये दो भगूने बड़े पार्क में ले जाता व किसी पेड़ के नीचे पिकनिक होती। ये कार्यक्रम लम्बी छुट्टियों में ही होता, सो साठे साहब तो दोपहर दफ्तर में होते।

दिन खुशियों से लबालब थे। नन्दू अपने जीवन में किसी और स्त्री की कल्पना भी नहीं कर सकता था। कभी-कभी शाम को मिसेज़ कक्कड़ पुराने रिकॉर्ड बरामदे में बजातीं। एक बार जब दफ्तर के काम से मिस्टर साठे भड़ोच गये, तो कक्कड़ साहब के दोस्त उस्ताद शरीफ़ुद्दीन का संगीत प्रोग्राम भी बरामदे में हुआ। गुलाबजामुन आये और लगभग तीस-पैंतीस लोग। बीच के अंतराल में नन्दू ने आग्रह करके सबको गुलाबजामुन खिलाये। यहां तक कि खुद उसके लिए एक गुलाबजामुन भी नहीं बचा। वह पत्थर के बरामदे से दस कदम पर किसी सोच में खड़ा था, तो चार गुलाबजामुन अचानक उसके सामने पेश करके अजन्ता ने उसे चकित कर दिया - "यह मैंने आपके लिए पहले ही निकाल लिये थे!" जब नन्दू ने खाने से इंकार कर दिया तो अजन्ता ने वीणा को बुलाया - "देखो, ताई, नन्दू ने सब गुलाबजामुन खतम कर दिये और अपने लिए एक भी न रखा।" वीणा ने फैसला दिया कि अजन्ता दो खाये और नन्दू दो खाये।" फिर भी नन्दू को तीन गुलाबजामुन खिलाये बिना अजन्ता छोड़नेवाली नहीं थी।

जूनियर बी. ए. में तब परीक्षा नहीं होती थी। और फिर नाट्य-प्रतियोगिता में नाटक खेलने में ही नन्दू व्यस्त रहा था। जब नाटक मंचित हुआ, तो नन्दू वीणा व श्रीमती कक्कड़ को भी ले गया। दबी ज़बान से उसने साठे साहब से भी कहा। उस दिन मामी आयी हुई थीं। वह भी हंसकर बोलीं - "लड़के का दिल रखने को बाळू, हम लोगों को चलना चाहिये।" साठे साहब ने गुस्से में कहा -" साहबज़ादे यहां ग्रेज्युएट बनने आये हैं या एक्टर! एक्टर होने के लिए बाप का पैसा खराब करना ज़रूरी नहीं।" खैर तांगे पर वीणा, मिसेज़ कक्कड़ और अजन्ता बड़ौदा कॉलेज के विशाल हॉल में नाटक देखने गये। प्रसादजी के 'स्कन्दगुप्त' के कुछ दृश्यों का मंचन किया गया था, जिनका दिग्दर्शन स्वयं नन्दू ने किया था। स्कन्दगुप्त का पार्ट भी स्वयं नन्दू ने ही किया था। छह दिन तक अन्तरभारतीय प्रतियोगिता हुई, जिसमें प्रत्येक प्रान्त के कॉलेज के ड्रामा आये। अंतिम दिन का अंतिम शो हिन्दी का

'स्कन्दगुप्त' था और प्रमुख अतिथि थे डा. राधाकुमुद मुखर्जी। आधा घण्टे तक सोच-विचार के बाद निर्णय किया गया और प्रथम पुरस्कार नन्दकुमार को मिला। नन्दू के मित्रों ने तालियाँ बजानी ज़ोर-ज़ोर से शुरू कीं और बजाते ही चले गये। डा. राधाकुमुद मुखर्जी ने एक हार पहनाते हुए बधाई दी और कहा – " इतना सुन्दर अभिनय मैंने पहले कभी नहीं देखा और आगे कब देखूँगा, नहीं कह सकता।" तालियां फिर बजनी शुरू हुई और तब तक बन्द न हुई, जब तक नन्दू ने हाथ उठाकर बन्द न कीं।

दूसरे दिन श्रीमती कक्कड़, छुट्टियों में लखनऊ आने को नन्दू को निमंत्रण देकर, वापस चली गयीं। कक्कड़ साहब को कहीं कार्यक्रम देना था। साठे साहब दफ़्तर गये थे। वीणा का बाल धोने का प्रोग्राम था। उसने सुबह से अरीठे पानी में भिगो दिये थे। दालान में मोढ़े पर बैठा नन्दू दूसरे पहर के लकदक आकाश को देख रहा था। कहीं दूर पर कोई कुछ ठोंक रहा था। न जाने नन्दू को अपनी मां की शक्ल क्यों याद आ रही थी। बड़े भाई के यहां पिता से मिलने जाने का समय आ रहा था। खाली कमरे में एक पुराने पलंग पर पिता लेटे होंगे। मां की शक्ल याद आयी, फिर मां की मृत्यु के बाद की पिता की शक्ल याद आयी और नन्दू के अनजाने ही उसकी आंखों से आंसू बहने लगे। परिचित-सी आहट पाकर उसने आंसू पोंछ डाले। उस मौन दोपहरी में बहुत हल्के पीले रंग की साड़ी पहने अजन्ता खड़ी थी। उसके हाथ पीछे थे और अचानक जल्दी से एक गेंदे का हार उसने नन्दू के गले में डाल दिया-"इतनी बड़ी प्रतियोगिता में फर्स्ट प्राइज़ पाने के लिए मैंने ही आपको हार नहीं पहनाया था।" नन्दू जैसे भवसागर के पार हो गया। मुक्ति की इस साक्षात् मूर्ति ने उसे पृथ्वी से उठाकर नक्षत्रों में बिठा दिया। छलकती हुई हंसी से दीप्त उसने अजन्ता की ओर देखा और जैसे इतनी खुशी बर्दाश्त न करने के कारण वह बहुत ही निढाल हो गया। दूर से कुछ ठोंकने की आवाज़ आ रही थी।

नन्दू घबराया हुआ-सा बोला – "अजन्ता, मैं दो-चार दिन में घर जा रहा हूँ।" खुशी से भरी अजन्ता ने कहा – "बधाई, नन्दूजी। कितने दिन बाद आप अपने पिता से मिलेंगे। आप ही ने तो कहा था कि बिलकुल ही अकेले पड़ गये हैं वो।"

नन्दू ने बहुत ही नरम स्वर में कहा – "अजन्ता! मैं और दस दिन बाद जाना चाहता हूँ।"

अजन्ता ने नटखटपन से कहा – "मगर, मैंने सुना है कि चन्दा बोस भी कलकत्ता जा रही है। तो फिर बोर नहीं हो जायेंगे आप?"

"अजन्ता, यह मज़ाक करने का मौक़ा नहीं है। मैं तुम्हारे साथ छुट्टी के कुछ दिन काटना चाहता हूँ।"

तपाक से अजन्ता ने कहा - "हम या चंदा बोस या और किसी के लिए आप ठहरें, मगर हम कितने दिन हैं। एक न एक दिन तो आपको वापस घर जाना ही पड़ेगा। मगर आपके पिता! वे हमेशा आपके साथ रहेंगे। उनका प्यार और लोगों की तरह कभी कम या ज़्यादा नहीं होगा। यही सब सोचकर आपको जल्दी-से-जल्दी अपने पिता के पास जाना चाहिये।"

बड़ी ही करुण आवाज़ में नन्दू ने कहा - "अजन्ता।"

फ़ौरन अजन्ता ने किसी बूढ़ी औरत की तरह समझाते हुए कहा - "नन्दूजी, क्या फ़ौरन अपने पिता के पास न जाकर आप स्वार्थी नहीं बन रहे हैं? सोचिये, एक बड़े मकान के सन्नाटे में पलंग पर अकेले पड़े आपके पिता आपके लौटने का एक-एक पल गिन रहे होंगे। जब आप कमरे में घुसेंगे, कितनी खुशी होगी उनको। आपके फ़र्स्ट प्राइज़ की बात सुनकर उनमें नयी ज़िन्दगी आ जायेगी।"

नन्दू बहुत उदास हो गया –"अजन्ता अभी तो एक साल और यहां पढ़ना है। लौटने का साहस मैं यही सोचकर जुटा सकता हूं कि तीन महीने बाद फिर तुम्हारे पास लौटना है।"

अजन्ता फ़ौरन बोली - "अगले साल भी! साठे साहब के ऐसे भयंकर अपमान आप और एक साल झेलने को तैयार हैं। इतना गुस्सा आता है मुझे नन्दूजी, कि वीणा ताई से लड़ूँ कि वह क्यों कुछ नहीं बोलतीं।" फिर दृढ़ता से उसने कहा - "कुछ भी हो, अगले साल आपको हॉस्टेल में ठहरना चाहिये।"

तुनुक कर नन्दू बोला - "तो मैं आज शाम को ही छह बजे की ट्रेन से रवाना हो जाऊंगा।"

"ब्रेवो।" अजन्ता ने कहा - "उनको मेरा भी प्रणाम देना। शाम को स्कूल में प्रोग्राम है। मुझे भी डान्स का एक प्रोग्राम देना है। तो अभी से आपको नमस्ते कहती हूँ। पत्र लिखियेगा।" कहते-कहते अजन्ता ने पहली बार नन्दू से हाथ मिलाया।

जहाज़वाला



सरदार गुरुकिरपासिंह ने दूसरे महायुद्ध में महावीर-चक्र पाया था। जब अमृतसर के गुरुद्वारे में फ़ौज को भेजा गया, तो वह उसके विरुद्ध थे। फिर जब सिक्खों के विरुद्ध दंगे हुए तो उन्होंने इंदिराजी से कहा कि बेक़सूर सिक्खों के ऊपर अन्याय हुआ है। इंदिराजी उनकी बहुत इज्ज़त करती थीं। मगर धीरे-धीरे उन्हें एहसास होने लगा कि प्रधान मंत्री की मसरूफ़ियत बढ़ती जा रही है और उनसे मिलने के लिए समय निकालना उन्हें मुश्किल होने लगा है। मंदिर में घुसकर बाग़ियों को निकालनेवाले दस्ते के प्रमुख नेताओं में से एक थे सरदार बख़्तावरसिंह, जो सरकार के खास आदमियों में समझे जाने लगे थे, और कम-से-कम हफ़्ते में दो बार किसी-न-किसी मंत्री के घर खाना खाते थे। गुरुकिरपासिंह की पत्नी सरदारनी संतोष ने बख़्तावरसिंह की लड़की फ़तेहकुमारी का हाथ अपने इकलौते लड़के अर्जुनसिंह के लिए, अपने पति की राय के विरुद्ध स्वीकार कर लिया था। पंज पियारों ने उनका बहिष्कार करने का निर्णय लिया, तो गुरुकिरपासिंह ने सिर झुकाकर स्वीकार किया। केवल दबी ज़बान में कहा कि बाप की ग़लती की सजा कुड़ी को देना ठीक नहीं।

गुरुकिरपासिंह के इकलौते लड़के की शादी में उसके बाप का केवल एक दोस्त आया। यह वह फ़ौजी था, जिसकी जान बचाने को कश्मीर में उन्होंने अपनी जान को खतरे में डाला था। नयी बहू फ़तेहकुमारी को फ़ौज के व सरकार के बड़े-बड़े अफ़सरों की तरफ से कई काम की चीजें इनाम में मिलीं - खाना बनाने की बिजली से चलनेवाली कुकिंग रेंज, बिजली की इस्त्री, टी. वी. आदि। गुरुकिरपासिंह का 2 कमरों का घर इन चीज़ों से भर गया। छत के पास का कमरा गुरुकिरपासिंह ने ले लिया और सीढ़ियों के पास का कमरा उन्होंने अर्जुनसिंह और फ़तेहकुमारी को दिया। दूसरे दिन उनके लड़के अर्जुनसिंह के आग्रह पर सीढ़ी के पास का कमरा उन्होंने ले लिया और छत के पास का वर-वधू को दे दिया।

सरदार गुरुकिरपासिंह बहुत ही सादी ज़िन्दगी जीने में विश्वास करते थे और संसार को 'अंधकूप महाभयानक' कहनेवाले गुरु नानक पर उनकी पूरी आस्था थी। वाहे गुरु क्या नहीं कर सकते! सो उनका अधिक समय नामजप में बीतता था– सुबह शाम गुरु की सेवा को गुरुद्वारे में जाते थे। कभी-कभी वहां उन्हें अपने समधी सरदार बख़्तावरसिंह मिलते, जो तपाक से 'सतसिरी अकाल' कह कर हाथ जोड़ते और शिकायत के स्वर में कहते – "तुसी ख़फा हो क्या? हमारी झोपड़ी में भी

थ्वाड़े पायादी धूल पड़नी चाहिये। रब की भगती का ई मतलब तो नहीं कि अपनी फ़ॅमिली को ही छोड़ दो!'' हाथ जोड़कर गुरुकिरपासिंह कहते – ''मेहरबानी सरदारजी! अब कितने दिन और हैं। नानक नाम जहाज़ है। उतर जायें पार तो अच्छा!''

महावीर चक्र के विजेता गुरुकिरपासिंह को लोग अभागा समझते थे। जो एक दिन प्रधानमंत्री के साथ ही खाना खाता था, वह गुरुद्वारे में फ़ौज के जाने के विरुद्ध सबके आंख की किरकिरी बन गया। विश्वस्त सूत्रों से यह ही पता चला था कि गुरुकिरपासिंह के बहनोई व चचेरे भाई उन पर हंसते थे।

एक दिन रात के दस बजे इंदिराजी मंदिर को लेकर सरकार के रवैये पर बोलनेवाली थीं और गुरुकिरपासिंह के खास-खास दो चार मित्रों का कहना था कि सिक्खों के खिलाफ़ दंगा करनेवालों के विरुद्ध कार्यवाही की जायेगी।

ठीक दस बजे गुरुकिरपासिंह बड़े अदब से अपने लड़के और बहू के कमरे में टी. वी. पर प्रधान मंत्री की तक़रीर सुनने पहुंचे। दस बजे नवविवाहितों के कमरे में घुसना उन्हें बहुत बुरा लग रहा था, पर उन्हें इस मसले को लेकर अपने समस्त जीवन की सार्थकता या निरर्थकता का निर्णय करना था। स्वाभाविक है कि बिचारे नव दम्पति फिल्मी गानों का एक प्रोग्राम सुनते-सुनते बिस्तर को ठीक से लगाने का आयोजन कर रहे थे। महावीर-चक्र विजेता गुरुकिरपासिंह ने हकलाते हुए कहा – ''माफ़करना जी! दस बजे इंदिराजी का भाषण आ रहा है। जरा सुनना था।'' दोनों ने उनका स्वागत करके उन्हें बिठाया। दस बजे जो भाषण शुरू हुआ, वह लम्बा ही लम्बा होता गया। ओढ़कर लेटी हुई फ़तहकुमारी ने क्षुब्ध स्वर में कहा - ''सरदारजी, बाहर लगा दो टी. वी. ।'' थोड़ी हिचक के बाद गुरुकिरपासिंह उठ खड़े हुए और चुपचाप बाहर आ गये। उन्हें लगा कि अगर बाज़ार खुला होता, तो अभी जाकर एक टी. वी. खरीद लाते। जैसे फर्ज़ अदाई को विनीत स्वर में बोले - ''माफ़ करना जी। मुझे नहीं लगा था कि स्पीच इतनी लम्बी हो जायेगी।''

महावीर-चक्र विजेता के आत्म-गौरव पर बाहर ही कई चोटें पड़ चुकी थीं। अब मार अन्दर से लगनी शुरू हुई। मगर वह केवल यही सोचते थे - ''वाहे गुरुजी की मरज़ी। मैं जरा ज़्यादा ही अपनी इज़्जत पर फूलने लगा था।''

निश्चित ही इस घटना से एक ऐसा पर्दा खुलना शुरू हुआ, जिसके पीछे के दृश्य का अनुमान कभी स्वप्न में भी वह नहीं लगा सकते थे। आपस की समझ यह थी कि सरदारनी संतोष तंदूर जलायेंगी और रोटी बनायेंगी और अर्जुनसिंह सब्ज़ी और सालन लाकर देगा और फ़तेहकुमारी बनायेगी। सरदारनी संतोष तूअर की दाल या माश की दाल या छोले भी बनायेगी। सुबह ग्यारह बजे तक जपजी का

पाठ समाप्त करके गुरुकिरपासिंह गुरुद्वारे के कीर्तन में शरीक होकर साढ़े बारह बजे आकर खाना खाते थे। उस दिन जब लौटे तो उनकी पत्नी से पूछकर फ़तेहकुमारी रसावाली मछली बना रही थी। उसने प्याज़ तलकर उसमें मछली के टुकड़े डाले ही थे कि रसोई में से होकर सरदार गुरुकिरपासिंह गुसलखाने की तरफ़ जाने को बढ़े। खाने के बहुत शौकीन और खुद भी बहुत अच्छा खाना बनानेवाले गुरुकिरपासिंह ने देखा कि फ़तेहकुमारी मछली बिना-तले उसमें पानी डाल रही है। सब्ज़ी पनीली हो जाने के डर से बोले - "बेटा, दही और अदरक डालो। और मछली पहले काटकर तलनी थी। पानी तो अभी आध घंटा नहीं डालना है।" फ़तेहकुमारी बहुत ठंडी और दृढ़ आवाज़ में बोली – "जो अर्जुन को पसन्द है वही बनाती हूँ।" मुंह की खायी बूढे फ़ौजी ने मगर पगड़ी टेढ़ी तो हो गयी थी पर नीचे नहीं गिरी थी। सोचा सरदारनी से कहकर अपने लिए अलग से मछली बनवायेंगे। सरदारनी बोली- "उसकी मां का खाना बनाना तो बहुत मशहूर है। उससे सीखकर आयी है। अगर मेरा काम ही बढ़ाना चाहते हो, तो बना देती हूँ।" "रहने दो।" सरदार गुरुकिरपासिंह बोले - "रहने दो। उबली हुई का ज़ायक़ा मुझे जरा मुश्किल पड़ता है।" जानकार व्यक्ति की तरह उनकी सरदारनी बोली - "ज़िन्दा रहने के लिए खाना चाहिये, सरदारजी, तुम तो खाने के लिए जीते हो।" "अच्छाजी", कह कर सरदारजी छज्जे पर चले गये।

दूसरे दिन श्री नानकदेवजी के जन्मदिन पर प्रधानमंत्री ने कुछ खास-खास लोगों को खाने को बुलाया। गुरुकिरपासिंह को नहीं बुलाया गया। फ़तेहकुमारी, उसके पिता बख्तावरसिंह और पति अर्जुनसिंह को बुलाया गया। यह लोग लौटकर आये तो बेटी-जमाई के साथ बख्तावरसिंह भी अपने समधी गुरुकिरपासिंह से मिलने आ गये। तब गुरुकिरपासिंह चड्डी और बनियान पहने सिर्फ़ अपने लिए मछली तल रहे थे। बख्तावरसिंह ने खुशबू लेते हुए कहा - "वाह सरदारजी, क्या खुशबू है! आज तुसी जमे हो। मैं तो खाना खाये बिना जाना नहीं। पर सरदारजी, बेटी को सेवा करने दो। अब तो तुम्हारी उमर नामजप में बीतनी चाहिये।" और सरदारनी की तरफ़ देखकर हँसकर बोले – "है ना ठीक बात भैणा। जब बहू आ गयी है तो सरदारजी क्यों अपना वक्त ज़ाया करें।" सरदारनी ने गंभीर होकर कहा - "सरदारजी को बहू के हाथ का खाना पसन्द नहीं!" अपने जमाई से उन्होंने पूछा - "क्यों अर्जुन! क्या मां के खाने में और फ़तेहकुमारी के खाने में तुझे कोई फ़रक़ लगता है?" अर्जुनसिंह ने धीमी आवाज़ मे कहा – "मुझे तो नहीं लगता है।" सरदार गुरुकिरपासिंह झुंझला कर बोले - "क्या अपनी पसन्द से बनाकर खाना भी नहीं

खा सकता हूँ?'' ''अरे, खा ना! कौन रोकता है? मगर अब तेरी आराम करने की उमर है।''

गुरुकिरपासिंह के मन की स्थिति समझी जा सकती है। वातावरण में तनाव बढ़ गया। पति के मुख की तरफ़ देखकर सरदारनी को लगा कि अभी कुछ हो न जाये। वह जैसे वातावरण को शान्त करने की ग़रज़ से बोली - ''चलो, जाने दो! मैं फ़तह को सामने खड़ी हो कर सिखाऊंगी!'' फ़तेहकुमारी ने ठंडी पर दृढ़ आवाज़ में कहा - ''मैनू बीबी ने सब सिखाया है। आप मुझे बता दो फिर जैसा मुझे ठीक लगेगा, मैं बना लूँगी।'' सरदार गुरुकिरपासिंह ने जबर्दस्त नियंत्रण का परिचय दिया, हंसकर बोले - ''खाना खाकर ही जाना जी! तुम्हें खुद मालूम हो जायेगा कि मेरा खाना कैसा होता है।'' बख्तावरसिंह ने स्वीकार कर लिया। दो बजे दोनों खाने बैठे। सरदार बख्तावरसिंह ने कहा - ''वाहे गुरु! खाना तो सचमुच बहुत अच्छा बना है, मगर अब हम लोगों की उमर क्या खाना बनाने की है। वो कहा है ना जी - ''अच्छे वही हैं कि जो हर हाल में खुश हैं।'' फिर कुछ रुक कर बोले - ''एक ज़माना था जब तुझे महावीर चक्र मिला था। इन्दिराजी भी खड़ी होकर तेरा स्वागत करती थीं। अखबार में तेरा फ़ोटो छपा था। हम सब लोग तुझे सतसिरी अकाल करते हुए गर्व करते थे। और अब। देख क्या हालत है? इंदिराजी तेरा नाम लेते ही चुप हो जाती हैं। अफ़वाह सुनी है कि तुझे अगले परब में तनख़ैया घोषित करनेवाले हैं। और तू कुछ कर नहीं रहा है। खाना बना रहा है और तेरी शान ख़तम होती जा रही है। तुझे हम लोग ऐसा नहीं समझते थे।''

बात पर ग़ौर न करते हुए गुरुकिरपासिंह ने पूछा कि तनख़ैया क्यों बनानेवाले हैं मुझे? गुरुद्वारे में घुसने वालों में तू तो था। मैंने तो इसके खिलाफ़ ही बोला था। इसी से तो परधान मंत्री मेरे से खफ़ा हैं। ''मुझे क्यों तनख़ैया बनायेंगे? मैंने तो हमेशा गुरुद्वारे के हक़ में अपने को झुकाया है।'' बख्तावरसिंह ने गंभीर होकर कहा -''मानता हूं तेरी सब बात। मगर अनियाय तो हो रहा है। हम लोग क्या कर सकते हैं। मैं बीच में बोलूंगा तो मुझे तनख़ैया बनना पड़ेगा। फिर भी बात करूंगा इंदिराजी से। वो कहती हैं कि तूने बहुत सेवा की है देस की।'' सरदार गुरुकिरपासिंह कुछ देर चुप रहे, फिर बोले - ''इंदिराजी से मुझे कुछ नहीं चाहिये, मगर मैं जानना चाहता हूं कि मुझे तनख़ैया बना दिया जायेगा, यह तुझसे किसने कहा? इसका कारन-वारन भी कुछ है? क्यों बना दिया जायेगा तनख़ैया!'' कहकर गुरुकिरपासिंह जैसे जवाब के लिए राह देखने लगे।

थोड़ी देर चुप रहकर बख्तावरसिंह बोला - ''किसी ने पंज पियारों के कान

भरे हैं। तुझे उनसे ही बात करनी पड़ेगी। मैं तेरी तरफ़ से बोलूंगा।''

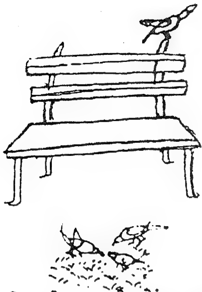
बात सच निकली। सरदार गुरुकिरपासिंह को तनख़ैया घोषित कर दिया गया। रात-दिन घर में बैठकर जपजी का पाठ करते थे, मगर खाना अभी भी बनाते थे। धीरे-धीरे तंदूर भी वही जलाने लगे और अपना आटा सानकर अपनी दोनों समय की रोटी भी बनाने लगे। पिछले 40 वर्षों की अनेक बातें उन्हें याद आती रहतीं और वह उनको दोहराते रहते। सरदारनी अपने बेटे-बहू से कहती – ''गरम दिमाग़ के हैं, तभी तो महावीर-चक्र लेके आये थे। तुम्हीं लोग बर्दाश्त कर लिया करो।''

रात के तीन बजे तक नामजप करते। महावीर-चक्र मिलने के अवसर पर उन्हें कन्धों पर उठाकर साथियों ने गाना गाया था - ''गुरुकिरपासिंह शेर है शेर! गीदड़ भाग जायेंगे, नहीं कुछ देर!'' हिन्दुस्तान की जीत पर, पाकिस्तान की पराजय होते ही एक भांगड़ा हुआ, तो रात-भर चला और जिसमें गुरुकिरपासिंह रात-भर अपने ही बनाये गाने को गाकर नाचे –

कि फ़ौज तेरी लंगड़ी है,
कि तोड़ी उसकी टंगड़ी है।
बने थे लड़वैये
निकल गये सब पहिये।

कुछ दिन को अपनी विधवा बहन विमल कौर के साथ वह नांदेड़ चले गये और वहां हर परब पर वह बहुत फरमाइश पर गाते थे -'' नानक नाम जहाज है!'' और गाना खतम होने पर कहते - ''जो जहाज़वाला है, वह किसी से क्यों डरेगा?''

अलग - अलग क़ैदखानों के क़ैदी



हबीब मेरा दोस्त सन 1933 से है, जब हम दोनों इन्दौर के स्कूल आव आर्ट में साथ-साथ बड़ा कलाकार बनने की साधना किया करते थे। उसे रफ़ायल का वर्क पसन्द था, मुझे मिक्लेनजलो का। मनुष्य की देह अपने आप में एक विश्व है और संसार के प्रसिद्ध कलाकारों में पुरुष-देह का सौष्ठव मिक्लेनजलो में कमाल का है। इसके लिए उस पर अनेक प्रकार के आरोप भी लगाये गये हैं। मिक्लेनजलो का आदम का चित्र बहुत ही प्रसिद्ध है। एक बहुत गरांडील नौजवान की निर्वसन देह का सामने का दृश्य है।

मैं हबीब के निमंत्रण पर उसके सतनावाले बंगले में जाकर ठहरा, क्योंकि कार्यक्रम खजुराहो जाकर वामन-मंदिर में मिथुन-रत मूर्तियों का अध्ययन करने का था। जूलाई के दिन, बारिश के मज़े। सिर्फ़ बारिश इतनी सुन्दर थी कि जब तक तीन दिन वह होती रही, हम बंगले में ही ठहरे रहे। हबीब का वज़न कम होता जा रहा था और बीमारी का पता नहीं था, इसलिए 4 महीने में एक बार उसे इंदौर के के. ई. एम. हॉस्पिटल में जाना पड़ता था, जहां मध्यप्रदेश के मशहूर डॉक्टर मुकर्जी की देख-रेख में उसका केस स्टडी हो रहा था।

एक हफ़्ते के बाद ही उसे दो दिन बाद इंदौर जाना था और उसके लौटने पर ही हम लोग खजुराहो जाने वाले थे। चौथे दिन याने बारिश रुकने के चौथे दिन वह अपने दादा की हवेली दिखाने ले गया जो खाली पड़ी थी। एक माली और उसकी चौदह बरस की लड़की जूही एक झोपड़ी में रहते थे। हबीब के जाने के ही दिन मैं बंगला छोड़कर हवेली में चला गया और माली रामलाल व जूही मेरी देखभाल करने लगे। हबीब के बंगले में भी कोई नहीं था। मां-बाप सीहोर में रहते थे और वह इकलौता लड़का था।

3 जूलाई की सुबह हबीब अपनी गाड़ी में इन्दौर चला गया और उसी दिन 12 बजे आकर जूही खाना दे गयी और पानी की सुराही रख गयी। हवेली को झाड़-पोंछ पहले ही दिया गया था। मैंने दीवानख़ाने में आसन जमाया और कील न पाने पर पीतल की एक मेज़ पर नग्न आदम का चित्र रख दिया। पर सामने जमा पानी के पास रुपहले काँस खूब ही उगे थे व बगुले वहां पानी पीने आते थे। मेरे लिए यह जादूनगर था और दुनिया की ज़िम्मेदारियों को भूले एक युग गुज़रा हुआ मालूम होता था।

लगभग दो बजे काली-कलूटी जूही जूठे बर्तन लेने आयी और बाक़ायदा एक ताज़ा बना हुआ पान भी लायी। मध्यप्रदेश के हर छोटे - से - छोटे गांव में पान की एक दूकान होती है।

जूही चली गयी तो मैं बाहर निकला। थोड़े से जल में खड़े बगुले ध्यान में मग्न थे। बादल नहीं थे। एक चट्टान पर एक घण्टा बैठा मैं देखता रहा। मालूम नहीं कितनी देर बैठा रहा। घड़ी देखी तो छह बज गये थे। बरसात की शाम। मेरे सिर के ऊपर से एक चमगादड़ निकल गया। वापस हवेली में घुसा तो अंधेरे का एहसास हुआ। दीवानख़ाने में जूही ने एक बार और झाड़ू दे दी थी और खिड़की के सामने एक पुरानी आरामकुर्सी लगा दी थी। बिस्तर भी बिछा हुआ था। बिना रौशनी के जलाये भी नयी सफ़ेद चादर से सज्जित ताज़ा बिछा बिछौना देखा जा सकता था। जूही बड़े ध्यान से आदम का चित्र देख रही थी। मुझे देखकर वह हट गयी और उसने पूछा – "खाना आठ बजे लाऊँ, बाबा ने पूछा है।" मैंने सहमति दे दी और मालूम हुआ कि खाना वही बनाते हैं। फिर रौशनी जलाकर आदम के चित्र का अध्ययन करने लगा और जब तक हबीब लौटे मैंने उस चित्र को कॉपी करने में अपना समय लगाने का सोचा। स्टॅन्ड पर बड़ा ड्रॉइंग पेपर लगाकर बेसब्री से स्केच उसी समय बनाकर सो गया। पुरानी हवेलियों के जैसा कुछ नहीं था। पंखा था और रात को खिड़कियां बन्द करके जूही चली गयी थी। वह नीचा मुंह करके गयी, जैसे उसे कुछ दिलचस्पी किसी चीज़ में नहीं है। मगर चौदह बरस की उमर के हिसाब से उसमें एक प्रकार की गंभीरता थी। गो बार-बार वह अपने आप जैसे कुछ याद करके हंसती थी।

दूसरे दिन से आदम के चित्र की नकल करनी शुरू कर दी। हमारे प्रिंसिपल, प्रसिद्ध चित्रकार श्री देवलालीकर का विश्वास था कि बड़े-बड़े चित्रकारों के चित्र नक़ल किये बिना कला में निष्णात नहीं हुआ जा सकता। सुबह सात बजे जूही गरम टोस्ट और चाय दे जाती थी। लगभग बारह बजे खाना। जब भी वह आती हाथ के बर्तन रख कर एक बार पांच मिनट तक बनते हुए चित्र के सामने ज़रूर खड़ी होती थी, जैसे उसे किसी बात का इन्तज़ार है। मैं बहुत धीरे-धीरे बना रहा था, क्योंकि एक तो मैं हबीब की बीमारी के बारे में चिन्तित था और मुझे उसके लौटने का इन्तज़ार था और दूसरे मुझे अपने ऊपर किये उसके सब एहसान याद करके बहुत दुःख हो रहा था। अगर हबीब जैसा मित्र न होता, तो गलियों में पला मेरा जैसा अनाथ लड़का कभी भी आर्ट का कोर्स नहीं कर सकता था। कॅलेन्डर कम्पनियों से व अन्य तिजारती संस्थाओं से वह यदि मुझे काम नहीं दिलवाता रहता, तो आज

मैं ज़िन्दा नहीं होता। वह बहुत जाने-माने आदमी का लड़का था और मुझे भाई से भी ज़्यादा चाहता था। सात बरस की उम्र से उसने छोटे भाई की तरह ही मुझे प्यार दिया था।

जूही अब बिलावजह भी कमरे में किसी-न-किसी बहाने से आने लगी। जब भी आती तस्वीर के सामने खड़ी होकर हंसती और चली जाती। मैंने पाया कि इससे मेरे काम में खलल होने लगा। आखिर मुझे उससे पूछना पड़ा कि वह बार-बार वहां आकर क्यों खड़ी होती है। वह चली गयी। मगर दोपहर को खाने के बर्तन ले जाने जब आयी तब उसने पूछा - ''हबीब भइया कब आयेंगे, उन्होंने कुछ लिखा है?'' मैंने कोई चिट्ठी आने पर उसे बताने का वायदा किया। मगर फिर भी वह खड़ी होकर चित्र ही देखती रही। ''इस फोटू को बनाकर तुम क्या करोगे? क्या हबीब भइया के लिए बना रहे हो?'' ''नहीं! यह तो मेरा काम है। मैं ऐसा फोटो नहीं बना सकता, इसलिए सीख रहा हूँ!'' तआज्जुब से उसने कहा - ''ऐसा इस फोटू में क्या है जो तुम नहीं बना सकते? फूल?'' मैं बहुत सकपका गया। फूल तो उस फोटो में नहीं था। ''फूल कहां है यहां?'' मैंने उससे पूछा। उसने उंगली से कहीं दिखाया जो मैं समझा नहीं। दो घंटे बाद जब वह चद्दर बदलने आयी, तो मुझे कुछ अंदाज हो चुका था कि वह क्या कहना चाह रही थी। मगर चादर बदलकर वह चुपचाप चली गयी। बूंदाबांदी हो रही थी। मुझे नहीं मालूम था कि शायद इसी वजह से वह छज्जे पर जाकर खड़ी हो गयी थी। जब बारिश तेज़ होने लगी, तो वह मेरे पास आकर बोली - ''बरसात में झोंपड़े पर जाने में भीग जाऊंगी। जब तक बारिस रुके तब तक यहां खड़ी रहकर फोटू देखूँ।''

बारिश रुकी तीन घण्टे बाद। तब तक अंधेरा हो गया था। ब्रश तीन घण्टे तक मैंने नहीं उठाया था। जूही को उसके बाप ने बुलाया और वह जाकर थाली लायी और रख गयी। तीन घण्टे पहले मुझे बहुत भूख लग रही थी, मगर खाने की इच्छा न होने से मैं बिस्तर पर लेट गया और जाने कब सो गया।

हबीब इन्दौर से लौटा तो अपने साथ एक नर्स मिस काले को लेकर आया। तीस-बत्तीस बरस की गेहुँए वर्ण की औरत। हवेली में मुझे बुलाने दोनों आये। हबीब ने परिचय कराया – ''मिस काले, मेरी देखभाल करने इंदौर से आयी हैं। बीमारी का कुछ अन्दाज़ डा. मुकर्जी को हुआ ज़रूर है, पर उन्होंने किसी को कुछ बताया नहीं। मिस काले ने पहले एक केस ऐसा देखा है, इसलिए इन्होंने मेहरबानी से मेरी मदद करने का बीड़ा उठाया है। यह मेरा छोटा भाई विनय। हम दोनों एक दूसरे को सात बरस की उम्र से जानते हैं! लगता है इसका दिल टूटी-फूटी पुरानी चीजों

में ही ज़्यादा लगता है। वापस बंगले पर हमारे साथ चलने को शायद ही तैयार हो!''

मालूम नहीं इतना ठीक अन्दाज़ हबीब ने कैसे कर लिया। मेरा अभी तक का जीवन जैसे कहीं दूर डूबते हुए दिन की तरह झलमला रहा था और मैं किसी भूत-प्रेत की नगरी में यंत्र की तरह चल-फिर रहा था। खजुराहो जाने के बारे में मिस काले ने निर्णय किया कि सफ़र की थकान जाने में हबीब को चार दिन लगेंगे और खजुराहो तभी जाना ठीक होगा। मुझे खजुराहो में दिलचस्पी कम हो गयी थी और आदम के चित्र को पूरा करने में ज़्यादा अपनापन लग रहा था। बूंदा-बांदी होती रहती थी और सामने के कांस के वन में बगुलों के झुंड मँडराया करते थे। जूही बार-बार किसी बहाने से आ जाया करती और फिर चार-चार घण्टे के लिए मेरा काम बन्द हो जाया करता। चार दिन बाद खजुराहो का कार्यक्रम बनने को था कि अपनी मौसी की मौत के कारण हबीब को सीहोर जाना पड़ा। मिस काले बंगले में अकेली हो गयी। एक बावर्ची था ही जो खाना बनाकर खिलाता था और ऊपर के काम को एक लड़का था। हवेली छोड़कर बंगले पर आने को उन्होंने बहुत कहा, पर हवेली में मैं जैसे स्वप्न में जी रहा था। भूल चुका था कि मैं कौन हूँ। इस जिज्ञासा में कि जूही क्या कहना चाहती है मेरी अपनी कई जिज्ञासाएं मिल गयी थीं। फिर भी कॅथलिक अनाथाश्रम में बड़ा होने के कारण कहीं अंधेरे में से कोई परिचित आवाज़ फुसफुसाकर कह रही थी - ''विनाश! विनाश! अब भी सम्हलो!'' और सम्हलने का मतलब मेरे अन्तःकरण ने तरह-तरह से मुझे समझा दिया था। एक ही बात सदा समझ में आती थी कि मैं तो अत्यन्त पापी जीव हूं, मगर जूही को पाप से बचाना ही होगा! देखना होगा उसका जीवन विनष्ट न होने पाये। विवेक अपनी जगह था और इंद्रियों का दुर्बल खिंचाव अपनी जगह।

छह दिन हो गये और हबीब की कोई ख़बर नहीं मिली, तो मिस काले के आग्रह पर मैं बंगले पर चला गया। जूही को बता गया कि हबीब भइया के लौटने पर लौट आऊंगा।

बारिश की वजह से बाहर निकलना तो बहुत कम होता था। ड्रॉइंग रूम के पर्दे खींच कर सोफ़े पर बैठे हम लोग ज़्यादातर हबीब के बारे में बातें करते रहते। मिस काले की माँ स्त्रियों की एक संस्था अहिल्याश्रम में नौकरानी थी। वह भी कॅथलिक थी, मगर मिशन अस्पताल के एक कम्पाउंडर के साथ शादी करके हिन्दू हो गयी थी। आर्य समाज के एक प्रचारक ने उसकी बहुत मदद की थी और शादी के बाद उस कम्पाउंडर को एक आर्य समाज पुस्तकालय में लायब्रेरियन बनवा दिया था। उसे मालूम नहीं था कि इतना शरीफ़ दिखनेवाला हबीब ऐसा निकलेगा। नर्सिंग के

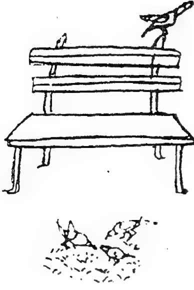
लिए सेवा-भाव से लोगों के घर जाना तो उसका पेशा है, मगर यह तो उस डाक्टर जोशी से भी बदतर निकला, जिसके घर उसने ड्यूटी की थी। उसे 5 जूलाई से जो जीवन जीना पड़ रहा है, वह तो नरक का खुला द्वार है। महर्षि दयानन्द की कृपा से उसने कभी ऐरे-ग़ैरों के यहां ड्यूटी नहीं की, संयमपूर्ण जीवन बिताया। मगर क्योंकि जो बीमारी हबीब को है उसको सबसे ज़्यादा उसी ने समझा है, इसलिए डाक्टर के आग्रह पर मनुष्य सेवा के भाव से वह आ गयी। हरि ॐ। हरि ॐ। अगर विनय नहीं होता, तो इस क़ैद से वह कैसे निकलती।

हबीब नहीं आया। भोपाल में अपने बाप के आग्रह से वह फिर इलाज करवाने लगा। दस दिन बाद उसका तार आया कि बीमारी नयी होने के कारण भोपाल के डाक्टरों की सलाह पर उसे अमेरिका जाना पड़ेगा। तब तक ये लोग सतना में ही एनजॉय करें। जैसे मुझे होश आया कि मैं यहां क्यों आया हूं। दो दिन के अन्दर हम दोनों खजुराहो गये और चार दिन तक एक हॉटेल में रहे और फिर लौट आये। सुबह आठ बजे से शाम के आठ बजे मंदिर-मंदिर जाकर मैं वहशत में चित्र बनाता था– स्केच के बाद स्केच और एक ही स्केच को बार-बार ! मिस काले एक बड़े थर्मस में चाय लिये मेरे साथ रहती थीं और बीच-बीच में आग्रह करके मुझे चाय पिलाती थीं। लौटना कहीं नहीं था, मगर हॉटेल में देने के लिए जब पैसे समाप्त हो गये तो हम लोग सतना लौटे।

अब होश आया कि घर लौटने के पैसे भी नहीं है और हबीब के लौटने तक अलग-अलग क़ैदख़ानों के बदले दोनों क़ैदियों को एक ही क़ैदखाने में रहना पड़ेगा। हाँ, अगर एक चित्र भी बिक जाये तो लौटा जा सकता है। या तार देकर किसी मित्र या रिश्तेदार से रुपया मंगाया जा सकता था। मगर पैसा भेज सके ऐसा कोई भी मित्र या रिश्तेदार दोनों में से किसी का नहीं था।

जब कुछ नहीं किया जा सकता, तो क़ैद में रहने में खुशी महसूस करने की आदत डालनी चाहिये और जिस दिन सुबह हम दोनों ने यह संकल्प किया, उसी दिन ख़बर आयी कि शिकागो में हबीब की मृत्यु एड्स से हो गयी।

सांपिन



सुबह सात बजे - छुट्टी के दिन! हम लोग बिस्तर में ही थे। रात-भर मैं दीवारों पर बड़ी-बड़ी सीपियाँ चिपकाता रहा था। प्लास्टिक के केंकड़े, रबर की मछलियाँ, और मिट्टी के झींगे, दो-चार लकड़ी के कछुए दीवारों पर लगाता था। 31 साल की उम्र में मेरा स्वभाव वैसा ही था, जैसा कि पांच वर्ष की आयु में था। और दुनिया ने हमें और हमने दुनिया को छोड़ दिया था – हमारे यहां कोई आता भी नहीं था। बस घर में तरह-तरह के वातावरण बनाने व तरह-तरह के खाने ईजाद करने में न जाने कब सुबह होती थी और कब शाम होती थी।

हमारी ज़िन्दगी में केवल एक बात ऐसी थी, जो टॉलस्टॉय के विवाहित जीवन की याद दिलाती थी। जब मेरा विवाह हुआ था मेरे पास चार इमारतें थीं, गो थीं चारों चालें। चाल बम्बई में ऐसी इमारतों को कहते हैं, जिनमें एक कमरे में एक किरायेदार रहता है और बुनियादी सुविधाएं हर मंजिल पर एक ही होती हैं। कुल किराया तीन हजार रुपये आता था, जो आज से पचास साल पहले आज के तीस हज़ार के बराबर था। गाँव की अपनी जायदाद भूदान में विनोबाजी को देने के बाद मेरे पास गांव में भी केवल एक मक्के का खेत और एक दो कमरे का मकान बचा था, जिसके पीछे एक कुआं था जिसका पानी मीठा था। उसे भी डा. अम्बेडकर से प्रभावित होने के कारण अछूत कहानेवाली जातियों के लिए खुला कर देने के लिए उसमें से अछूतों के अलावा केवल हमारा परिवार ही पानी पीता था। जीवन में लगभग बहिष्कृत, विवाह के बाद मैं और बहिष्कृत हो गया था। मैंने जिस लड़की से विवाह किया था, वह भी कम्यूनिस्ट पार्टी की थी और पार्टी के सेक्रेटरी के लड़के को फ़िल्म में काम दिलवाने को बहुत दौड़-धूप कर रही थी। सेक्रेटरी और उनका लड़का निश्चिन्त थे कि सुभद्रा उसी से शादी करेगी। किन्तु विनोबा के आग्रह पर जब हम दोनों की शादी हुई, तो अनुमान किया जा सकता है नतीजों का – लड़के ने रो-रोकर हमारी बदनामी की और पार्टी से मुझे झूठे अभियोग लगा कर निकाल दिया गया। दुनिया के द्वारा अनेक अभियोगों का शिकार और बारह साल पार्टी का सबसे लाड़ला कार्यकर्ता होने के बाद अब केवल परिवार के स्नेह के सहारे पर मुझे जीना था। पर कहीं से टूटन शुरू हो गयी थी। सेक्रेटरी के लड़के की अफ़वाहों से मैं बौखला गया था।

ऐसे में रात-भर पुरानी बातों को लेकर विश्लेषण करने में सोते-सोते सुबह के चार बज जाते थे। और सात बजे दरवाज़े पर दस्तक!

किसी तरह कुड़बुड़ाता हुआ उठा, तो लगभग आनेवाले को गालियां देता हुआ। जाकर दरवाज़ा खोला तो एक सूट-बूट-सज्जित लम्बे-से 33-34 की उम्र के आदमी को खड़ा देखा – "मिस्टर मेघश्याम! मैं हूँ श्याम केळकर! मिसेज़ मेघश्याम का स्कूल का क्लासफेलो! हम दोनों गर्दे गुरुजी के यहां भी साथ-साथ पढ़ते थे।"

मैंने उनका स्वागत किया और टूटे बांस के सोफ़े पर उन्हें बिठाकर अन्दर आया। कुछ उत्तेजित अवस्था में मेरी पत्नी सुभद्रा सिर पर पल्ला डाल कर बाहर आयी – एक नक़ली मुस्कुराहट के साथ। "क्यों श्याम! बिहार से कब आये ? मैं इनसे कहती थी कि श्याम की बिहार में काग़ज की फॅक्टरी है। शादी के बाद हम लोग उसके पास जा सकते हैं।" श्याम केळकर जो सुभद्रा के आने पर खड़ा हो गया था, बैठते हुए बोला – "सुभद्रा! मज़ा आ जाता! तुम लोग आये क्यों नहीं!"

हलकी आवाज़ में मेरी पत्नी ने कहा – "इन्होंने जीवन में इतना सफ़र किया है कि सफ़र के नाम से घबराते हैं।" मैं बोला – "पार्टी के काम से बिहार के जंगलों में बहुत छिपता रहा हूँ। वहां की गरीबी और अज्ञान सह पाना अब मेरे लिए मुश्किल होगा।"

अनुमोदन करते हुए श्याम बोला - "यू आर राइट! आज के ज़माने में मेरे वर्कर दस रुपये रोज़ पर काम करते हैं। हू विल बिलीव ? कभी उन्हें दावत का बचा खाना दे दो तो गुलाम हो जायें। मगर एक बात है। जान उनकी उतनी ही सख्त है,जितना उनका जिस्म! सवेरे आठ बजे से शाम के छह बजे तक उनसे काम करवा लो! बस दस रुपये में ही गुलाम! सीधे लोग हैं मगर गरीबी ने उन्हें स्वार्थी बना दिया है।"

फिर कुछ नर्म आवाज़ में श्याम बोला – "एक बार बांस के जंगल में मुझे एक ज़हरीले साँप ने काट खाया था। भाग कर एक आदिवासी लड़की ने मुंह लगाकर ज़हर खींच लिया। पास के तालाब से खूब कुल्ला करके हंसती हुई आयी। मैं भी सांप के काटे पर एक्सपर्ट हो गया था। उफ़ कितने साँप थे वहाँ!" फिर रुक अपनी निर्भय मर्दानगी का सबूत पेश करते हुए श्याम बोला – "जेब में एक तेज़ रामपुरी रखता था। साँप के काटते ही दाँत से चाकू खोल कर उस जगह का मांस काट देता था।" कहकर उसने पतलून को घुटने तक ऊंचा करके पिंडली में एक भरे हुए घाव का निशान दिखलाया। सुभद्रा उठकर चाय और नाश्ता लेने अन्दर जाने लगी, तो श्याम बोला – "याद है सुभद्रा! चौपाटी पर हम कितने घंटे बैठकर गपशप

करते थे। तभी मैं सोचता था कि तेरी शादी किसी मद्रासी से होगी और मेरे फ्रेन्ड्स को गरम दोसा खाने का सुभीता हो जायेगा। मगर तू एक रिवोल्यूशनरी का घर बसायेगी, यह तो मैंने स्वप्न में भी नहीं सोचा था।''

सुभद्रा हंसकर अन्दर चली गयी पर मैं विनम्रता से बोला – ''यह आपसे किसने कहा कि मैं रिवोल्यूशनरी हूँ?''

किसी भेदिये के भाव से आँख मारकर उसने कहा – ''सुभद्रा के भाई ने बताया था कि आप विनोबाजी के चेले हैं।''

''सुभद्रा के भाई के लिए मुझे समझना मुश्किल पड़ेगा। मैं तो अपने को पाना चाहता हूँ। ज़मीन, जायदाद, यश-प्रतिष्ठा यह दरपन पर की धूल हैं। आदमी स्वयं अपने को नहीं पहिचान सकता! जाने दीजिये! यह बात फिर कभी। पर उस बहादुर लड़की ने जिसने आपके पांव में से ज़हर चूस लिया था फिर क्या किया? अब वह कहां है?''

ज़ोर से ठहाका लगाकर श्याम केळकर बोला – ''मैं वैसे तो बहुत जंगली आदमी हूँ, मगर कृतघ्न कभी नहीं हूँ। मैंने जब वंशलोचन को डिब्बों में भर कर मार्केट करना शुरू किया, तो उस लड़की जानकी को अपनी लेबॉरेटरी में रखकर काम सिखाया। मेरे वंशलोचन के फॉर्मूले का सीक्रेट मेरी फॅक्टरी में सिर्फ़ जानकी जानती है। मैं उसे बम्बई भी लाया हूँ। आप उसे देखेंगे तो पहचानेंगे भी नहीं। श्याम केळकर कभी अनग्रेटफुल नहीं हो सकता। उसने मेरी जान बचायी है! और ऐसी वफ़ादार दोस्त शहर में नहीं मिल सकती।''

इतने में सुभद्रा चाय की ट्रे और बिस्किट लेकर आ गयी। चारों तरफ मुस्कुराकर देखते हुए श्याम केळकर बोला – ''सुभद्रा!, तूने इतना अच्छा इंटीरीयर डेकोरेशन किया है कि लगता है हम समुद्र की तलहटी में हैं। एक इन्टीरियर डेकोरेशन का स्कूल खोलते हैं। ऊपर की आमदनी कम-से-कम पांच हज़ार। कहीं जाना भी न पड़ेगा। मैं पैसा लगाऊंगा। गवर्मेन्ट को कौन दे? आज आप लोग हमारे साथ कुमार गंधर्व के प्रोग्राम में क्यों नहीं चलते। दो एक्स्ट्रा टिकटों का इंतजाम मैं कर लूँगा!''

मैंने कहा – ''सुभद्रा जाये तो ले जाइये। मैं संगीत नहीं समझता। मैं ज़्यादा-से ज़्यादा पंडित जसराज के कॅसेट सुन लेता हूँ। कभी-कभी बेगम अख़्तर!''

वह गंभीरतापूर्वक बोला – ''आप चलिये तो! सुभद्रा तो हमारे कॉलेज की बेस्ट सिंगर थी। कुमार गंधर्व का सा गाने वाला इस सदी में नहीं हुआ। मेरी तो उम्र ही महफ़िलों में बीती है। अच्छा, कल सुबह आप दोनों हमारे यहां खाना खाने आइये। मैं आपको बाल गंधर्व के कुछ रेकर्ड सुनवाऊंगा।''

संक्षेप में उस दिन उसने मुझे दूसरे दिन अपने यहां खाना खाने को राज़ी कर लिया। उसकी टोयोटा तक हम उसे छोड़ने गये। गाड़ी स्टार्ट करते हुए बोला– "पैसा तो किस्मत का खेल है। मेरा विश्वास प्रेम में है। लव में। सुभद्रा, तुम्हारे घर में आकर लगा कि तुम्हारे हस्बन्ड उन कम आदमियों में से हैं, जो लव समझते हैं। और तुम लोग ऐसे संन्यासाश्रम में नहीं रहने दिये जा सकते। यह एक बड़ा पाप होगा। मैं चाहता हूँ तुम मेरी डार्लिंग वाइफ सुलोचना से मिलो। वह भी बहुत खुश होगी, तुम लोगों से मिलकर। कल मैं खुद आकर तुम्हें ले जाऊंगा। और शाम को ड्रॉप कर जाऊंगा। हम लोग भी कहीं आते-जाते नहीं।"

और मोटर ज़न्न से चली गयी।

अमावस्या के दिन हमने श्याम केळकर के यहां खाना खाया था। उसने ऐसे पर्दे लगाये थे, जो एकदम नये मालूम होते थे और जिन पर मछलियां, केंकड़े, कछुए, मगर और जल-पक्षी छपे थे। वह अपनी बीवी की ठोढ़ी बार-बार प्यार से छूकर कहता था –"जान खतरे में डालकर मैं इसे पाकिस्तान से भगा कर लाया हूँ।" मैंने इस बात में ज़्यादा दिलचस्पी नहीं ली और सौजन्यपूर्ण मुस्कान से सब सुनता रहा। कुमार गंधर्व के रेकर्ड भी उसने हमें सुनवाये और दो गाने सचमुच बहुत अच्छे थे। बीवी का इतना लाड़ अवश्य ही हरेक आदमी नहीं कर सकता। मैं उसके बारे में काफी अनुकूल राय बनाने लगा, जबकि मुझे मालूम हुआ कि उसका शैशव दमघोंटू गरीबी में बीता और उसकी स्कूल की फीस भी चंदे से दी जाती थी।

छह महीने बीत गये और कम-से-कम मैं उसे प्रायः भूल-सा गया था। उस दिन शिवरात्रि थी और मेरा उपवास था। जैसा कि अमूमन उपवास में होता है, मैं फल लाने मार्केट गया और इतने फल हिर्स में खरीद लिये कि वह उठाने मुझे भी भारी पड़ रहे थे। बारी-बारी दोनों हाथों में वजन उठाता मैं आ रहा था कि पीछे से आकर उसकी टोयोटा गाड़ी बिलकुल मेरे पास रुकी। अन्दर उसके पास सांवले और गदबदे बदन की 20-21 वर्ष की लड़की बैठी थी। उसने बहुत खुशी से कहा – "मैं आप ही के पास आ रहा था। बड़ी मुश्किल में फंस गया हूँ। आपकी राय के बिना काम नहीं बन सकता। आपको मेरे साथ चलना होगा।" मुझे उस लड़की की तरफ़ ध्यान से देखता पाकर उसने परिचय कराया – "जानकी! हमारी वंशलोचन कम्पनी की चीफ़ केमिस्ट!" मैं बोला – "आज शिवरात्रि है और मैं उपवास कर रहा हूँ। सिर्फ फल और दूध लेता हूँ। शाम को छह बजे से तीन घण्टे जप!" बहुत आग्रह से बोला – "मैं समझता हूँ। सुलोचना तो आज सिवाय चाय के कुछ नहीं लेती। मगर आपके अलावा और किससे सलाह मांग सकता हूँ। प्लीज़!

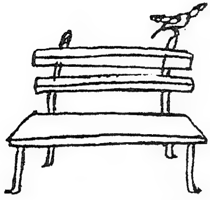
एक घण्टे में आपको घर पर छोड़ जाऊँगा। पवाई झील पर बातें करेंगे। अगले मोड़ पर जानकी उतर कर टॅक्सी से अपने घर चली जायेगी। प्लीज़!''

पवाई लेक की एक टूटी बेंच पर मुझे बिठाकर वह अपनी कहानी सुनाने लगा – ''भाई साहब, कृतज्ञता को मैं सबसे बड़ा गुण मानता हूँ। आप मानेंगे। यही वह लड़की है, जिसने मेरे पांव से सांप का जहर चूसा था। पहिचान सकते हैं आप कि पचास रुपये महीने पर वंशलोचन की मेरी फॅक्टरी में इसने सत्रह बरस की उम्र से काम शुरू किया था। पहिचान सकते हैं आप कि इसी लड़की को पीने के पानी का एक घड़ा लेने दो मील जाना पड़ता था। मैंने इसे काम सिखाया, ऊपर उठाया और सभ्यता सिखायी। इसके पास लगभग सुलोचना से ज़्यादा कपड़े होंगे। छह लाख की पगड़ी देकर इसके लिए दादर में एक फ्लॅट लिया, उसमें कार्पेट बिछवायी। एयर कंडीशन लगवाया। और क्योंकि खाने-पीने का आराम रहे, इसीलिए इम्पोर्टेड फ्रिज.लाकर रखा। इसे अपनी कम्पनी के वंशलोचन के सब फार्मूले बताये। लड़कियों को बताना ही ठीक रहता है। और कभी इसे नौकर की तरह ट्रीट नहीं किया। इस पर हर महीना चार हज़ार का खर्च है।''

मैं सुनता रहा! श्याम केळकर बोला – ''दुनिया में मेरा जैसा उल्लू कोई न होगा। मैंने इस लड़की के लिए क्या न किया। मुंह खोलते ही पैसा दिया। सिर्फ़ बाहर इसे अपने साथ न ले जाता था। और यह ट्रायबल लड़की सांपिन निकली।'' मैंने शांति से कहा –''क्या, हुआ क्या? क्या किया इसने?''

मर्दाने श्याम केळकर की आंखों में जैसे आंसू भर आये -''कल सुलोचना का बर्थडे था। उस खुशी में उसे व बच्चों को लेकर मैं खाना खाने ऑबेराय में गया। वहां दूर एक टेबल पर एक पंजाबी के साथ यह भी बैठी थी। रात के दस बजे। इतनी बेवफ़ा! धोखेबाज!! अभी जब मैंने उसे बताया कि अपनी दी हुई सब चीजें मैं वापस ले लूंगा और वह वापस बिहार जा सकती है तो जानते हैं इसने क्या कहा- 'मेरा पंजाबी फ्रेन्ड भी बम्बई में ही वंशलोचन की फॅक्टरी स्टार्ट करनेवाला है! मेरे फॉर्मूले से वह तुम्हें भी खत्म कर देगा।' .... सांपिन!''

भगवान की इच्छा



"हम लोग तो परवा देते हैं। इतना पैसा हमारे पास कहाँ ?" जब पत्थर की ज़मीन पर बैठे महावीर ने दियासलाई खोलकर उसमें से एक काड़ी निकालकर दी हुई चाय की शक्कर हिलाते हुए कहा, तो बात बिलकुल समझ में नहीं आयी। पहले तो यह शर्मिन्दगी हुई कि गरम चाय कप में देने पर भी उसे मैंने चम्मच न देकर कितनी लापरवाही दिखायी है। अपने व्यक्तित्व की खामियां संकट में एकदम मेरी समझ में आ जाती हैं। फिर मलाल और क्षोभ से बहुत पीड़ा होती है। पर पत्नी बीमारी के कारण एक महीने से अपनी मां के यहां थीं और अपने अतिथि-सत्कार के संस्कारों को अकेला अंजाम देते मैं सचमुच थक गया था।

महावीर मेरा धोबी है। हृदय से उच्चकोटि का कवि और उदारता में अपनी उपमा आप। चार आने में एक कपड़े का हिसाब आश्चर्यजनक था, क्योंकि वह जमकर कलफ़ लगाता था। चादर और रूमालों को छोड़ कर हर कपड़े में कलफ और चार आने में एक। यह अविश्वसनीय था, तब जब लॉण्डरी में कलफ लगे कपड़े का तीन रुपया था और घर आनेवाले धोबी 2 रुपया प्रति कपड़ा लेते थे।

कर्नलगंज, कानपुर का बाशिंदा पारिवारिक संत्रास और अकेलेपन में मेरे दो-तीन घनिष्ट मित्रों में से एक था। खाना-वाना खाकर हर बुधवार को वह लगभग दो या ढाई बजे आता था। मानसिक सन्ताप के कारण दिन को ही सोना कठिन था, रात को सोने का भी सवाल नहीं था। इसलिए जहां दूसरे लोग उसे ऐन दोपहर में आने के लिए भला-बुरा कहते थे, मैं उसका स्वागत करता था। फिर तीन बजे तक तो कम-से-कम वह जी खोल कर अपने जीवन के बारे में बताता था।

उस दिन बात मौत पर चल रही थी और हम दोनों अपने-अपने पिताओं के बारे में एक-दूसरे को बता रहे थे। "बाप बहुत मारता था। स्कूल से भाग आता था ना। एक दिन अपने साले के साथ भाग आया। उसने कहा था कि अपन लॉन्डरी खोलेंगे।"

"कितने बड़े थे महावीर, जब तुम भाग कर आये थे?"

"यही होऊंगा सोलह-सत्रा बरस का!"

"तो साला भी बन गया था? शादी किस उमर में हुई थी?"

"शादी? शादी तो तेरा बरस की उमर में हो गयी थी। उसके बाद साले ने सब पैसे जुए में खो दिये और खुद एक लॉण्डरी में नौकरी कर ली। मैं किसी की नौकरी नहीं कर सकता, सो तब से कपड़े पटक रहा हूँ। अभी दस साल बाद

गया था। बाप बीमार था। बहुत पैसा लगा कर इलाज किया पर मर गया।"

"क्रिया-कर्म सब करके आये ?"

"क्रिया-कर्म कैसा ? यह हम नहीं करते। हम लोग तो परवा देते हैं बस! इतना पैसा कहां है हमारे पास ?"

"परवा देते हो ? परवा ! मैं समझा नहीं महावीर !"

"अरे साहब, घाट पर जाकर गंगाजी में परवा देते हैं ! इतनी लकड़ी तो है नहीं हमारे पास। बस, एक डुबकी मारकर घर आ जाते हैं।"

तब मैं समझा कि परवा देने का मतलब है प्रवाह कर देने का। "तो तुम्हारा बाप, तुमसे सन्तुष्ट था ? तुम्हारे बारे में सुखी मरा !"

"नहीं, जब हमऊं सुखी नाँय तो बाप सुसरा कैसे सुखी होता। उसकी बात बचपन में मान लिए होते, तो आज रात-दिन कपड़े नहीं पटकने पड़ते।"

"तो क्या करते ? दफ़्तर में नौकरी ?"

"नहीं साहब, किसी की नौकरी तो हम कर नहीं सके हैं चाहे भूखे मर जायें। अब देख लो, मेरी छोटी बहन का मरद एक अमरूद का बाग खरीदे है। एक सिगरेट का डिब्बा पेड़ में बांधा है। डिब्बे से एक मोटी सुतली बाँधी है। दूर पेड़ की छांह में हम सोते थे। बस पांच-पांच मिनट पर सुतली खींचनी पड़ती थी। तोते अमरूद खाने आते थे तो उन्हें उड़ाना पड़ता था। ये नहीं कि सूरज उगने से सूरज डूबने तक ऐ मोटे-मोटे कपड़े जमीन पर पटक रहे हैं।"

"मगर फिर हमारे जैसे लोग क्या करते। तीन रुपये कपड़ा की दर से धुलाने की तो हमारी हिम्मत न होती भइया !"

"अरे साब, जब जरूरत होती है तो भगवान भेज देता है। अब आप ही सोच लेओ कि आज तक काम रुका है कोई आपका ?"

"मगर महावीर, इतने सस्ते धो कैसे देते हो तुम कपड़े।" "बस, कुछ खरचा तो हमें पड़ता नहीं है। चावल 20 कटोरी बनता है एक टेम ! दो जने हम और हमारे छह बच्चे और फिर गांव से कोई न कोई रिश्तेदार आता ही रहे है। तो एक दिन में डेढ़ किलो चावल से कम नहीं बनता। उसकी मांड में पानी मिलाकर एक पूरी खेप के कलफ़ का इन्तजाम हो जाता है ! हमें अलग से कोई कलफ़ थोड़े ही खरीदना पड़ता है।"

इस तरह घण्टों हमारी बातें होतीं। जब से मेरी नौकरी छूटी थी दोस्त और रिश्तेदारों ने आना-जाना बन्द किया था। यहां तक कि लोग रोज़मर्रा के काम की चीज़ें हमदर्दी में मदद के लिए लाने लगे थे ,जो जैसा उचित था वापस कर दी जाती

थीं। जिनको मैं अपने बहुत निकट का समझता था, उनकी आंखों में ऐसा भाव था कि हम तुम्हें ऐसा नहीं समझते थे, तुम तो बिलकुल पोले निकले। रिश्ते के एक चाचा तो ऐसा कह भी गये थे – "इतनी महंगी शिक्षा पाकर अब तुम जो कर रहे हो, वह तो कोई भी कर सकता है। हमने तो सोचा था कि एक दिन फ़ॉरेन सर्विस में जाओगे। मगर तुम तो बिलकुल पोले निकले।" सो महावीर मेरे इतने निकट आ गया था कि उसके आते ही मुझे ऐसी खुशी होती थी, जैसे मेरे बहुत ही निकट का कोई मित्र आ गया। ऐसा आदमी भी बम्बई में हो सकता है, जिसे नफ़ा कमाने की कोई फ़िकर नहीं। जो तोते उड़ाने के वर्णन में खो जाता है। वह प्यार करना जानता है।

उस दिन गुरुवार को आया, बुधवार को नहीं आ सका। आते ही बोला – "भइयाजी, कल नहीं आ सका। मेरा साला आ गया था, वह अपनी शादी में बुलाने आया है। मुझे ले जाये बिना नहीं छोड़ेगा। आपको थोड़े दिन कपड़ों की तकलीफ़ हो जायेगी। परसों साम की गाड़ी से जाऊंगा और अगले सोमवार तक आ जाऊंगा। लाइये, एकाध अर्जेन्ट कपड़ा हो तो कल तक खड़े घाट धोकर ले आऊंगा।" मैंने कहा, "महावीर तुम कब-कब गांव जाते हो ? मैं इतना जल्लाद नहीं कि तुम्हें शादी में जाने की तैयारी में काम पर लगाऊं। अच्छा यह बताओ कि क्या खास चीज़ बनायी जाती है तुम लोगों की शादी में ?" वह बोला - "सबसे पहले तो खूब महुवा आता है! और महुवा तो आप जानते ही हैं। एक चुल्लू महुवा धरती पर डाल दो तो सारा जंगल महक जाये। यह विलायती तो बास मारती है। और सुबू-शाम दोनों टेम मैदे की पूरी और दही-बूरा तो होना ही चाहिये। नहीं तो सारे गाँव के लोग नाम धरेंगे। अब आलू की भाजी तो हमेशा ही बनती है खूब हलदी डाल कर।"

मैंने हंसकर कहा – "क्या यह वही साला है जो पहिले भी तुम्हारे साथ आकर रहा था ?" "हां भइया, दूसरा साला तो मेरा बड़ा आदमी बन गया है। सीधे मुंह बात भी नहीं करता। बनारस की बस चलती है ना, उसमें ड्रैवर है। पगार तो अच्छी मिलती है मगर आखिर नौकर है। सच्चा धोबी किसी और का नौकर होना पसन्द नहीं करता।"

खैर, उसे याद आया कि टी.वी. पर मेरा प्रोग्राम है और मैं एक कांग्रेस मिनिस्टर का अभिनय कर रहा हूँ। "भइया टी. वी. के डरामे में कौन कपड़ा पहिन कर जाओगे ? एक ही कुरता तो है तुम्हारे पास! क्या मुझे नहीं मालूम ? लाओ, सामने तो लटका है, दे दो मुझे। कल दो बजे तक धो-धाकर कलफ़ करके ला दूंगा।" मना करते-करते उसने जल्दी से कुरता उतारा और ले गया। एक बार

लौट कर फिर बोला – "कल दो बजे तक जल्दी से देकर चला जाऊंगा। कुछ भी हो जाये आपको तकलीफ़ न होने दूंगा।" कोई वहां होता तो देखता कि बिना ग़रज़ के भी कितना प्यार बम्बई में किया जा सकता है। यह भी विश्वास करना मुश्किल था कि उस बिचारे को पैसे भी हमेशा देर से ही मिलते हैं।

रात को ईरानी होटेल से मैं टोस्ट और चाय लेकर आ रहा था कि मुझे याद आया कि उस कुर्ते में दो अशर्फियाँ थीं। ये अशर्फियाँ मरने के पहिले मेरी मां एक पड़ोसन के पास रखवा गयी थीं कि जब मुन्ने को जरूरत हो तब दे देना। मेरी पड़ोसन मेरी मां से बहुत सहायता लेती थी और एक बार जब उन्होंने जहर खा लिया था, तो उनके छोटे बच्चे को दूध भी मेरी मां ने पिलाया था। मगर पड़ोसन की बात फिर कभी। संक्षेप में मैं जब गांव गया था, तो पड़ोसन पर मेरी कड़की जाहिर हो गयी। उसे मालूम हो गया था कि बम्बई वापस लौटकर मेरे पास घर का किराया देने के पैसे न होंगे। उन्होंने आंख में आंसू भर कहा - "ये तीन अशर्फ़ियाँ मां दे गयी है। बहुत ख्याल रखती थी तुम्हारा! कहती थी कि यह लड़का कविता लिखने के अलावा कुछ नहीं करता, क्या जाने आगे क्या होगा। ज़ब बहुत ही मुश्किल में आ जाये तो उसे यह अशर्फ़ियां दे देना। पैसों की इतनी कड़की चल रही थी कि वह अशर्फियाँ बेचने को मैंने निकाली थीं। एक तो पिछले महीने बेच चुका था। साठ रुपये मिले थे, जो भला कब तक चलते।

महावीर पर तो पूरा विश्वास था मुझे, मगर डर था कि यदि कहीं गिर गयीं और महावीर को भी न मालूम हुआ तो मेरा क्या होगा। अगर भट्टी पर चढ़ा दीं। जिसे कलेजा मुंह तक आना कहते हैं वह हालत थी।

टॅक्सी न मिलने के कारण मैं पैदल ही भागा। उस वक्त मुझे दूरियों का, समय का व अपनी क्षमता का सब खयाल छूट गया था। उसके घर पर सिर्फ़ उसकी बीवी थी। मालूम हुआ कि वह धोबी-घाट गया है। मुझे घबराया देखकर उसने आग्रहपूर्वक छोटी-सी लड़की को सामने पान की दूकान से कुछ ठंडा लाने को भेजा। मैं मना करता रहा और वह कहती रही - "जा, जा, भाग कर जा! मोटर गाड़ी देखकर जाना!" मेरी और देखकर बोली - 'साल-भर के बाद तो आये हो भइया! महावीर बहुत गुस्सा होगा, अगर ऐसे ही जाने दिया!"

एक ठंडे ड्रिंक की बोतल आ गयी और पेश कर दी गयी। मैंने दो गिलास मांगे। वह बोली – "हमारे गिलास में तुम कैसे पिओगे बोलो? हमारे पास तो एक ही गिलास है। रोटी खाते हुए सब उसी से पीते हैं। मटके में गिलास डालते हैं। हमारे यहां एक ही गिलास है। किसी बाँभन को अपने घर का कोई बरतन कैसे

देंगे ?'' मैंने ठंडा पेय आधा गिलास में डालकर उन्हें दिया और बोतल से पीते हुए बोला – ''महावीर कब आयेगा ?''

उसके मुंह का रंग न जाने क्यों उड़ गया। बेदिली से उसने पूछा – ''कुछ खास काम है ?'' मेरा माथा ठनका। मैंने निश्चय किया कि महावीर जब तक नहीं आयेगा, मैं नहीं जाऊंगा। फिर भी बैठने की जगह न होने से मैं महावीर को आते ही भेज देने का कहकर घर आ गया। तआज्जुब होता रहा कि उसकी बीवी से पूछते ही वह घबरा क्यों गयी।

उम्मीद थी कि वह रात को आयेगा, पर वह नहीं आया। दूसरे दिन सुबह 7 बजे ही कलफ़-इस्तरी किया मेरा कुरता लेकर वह हाजिर हो गया। मेरे कुछ कहने के पहिले ही उसने कहा - ''माफ करना साब। मैं दिशा - मैदान गया था, तो मेरी औरत के साथ मिलकर मेरे साले ने मेरे सब पैसे बकस में से निकाल लिये। उसमें आपकी दो अशर्फियां भी थीं। साले को तो मैंने पुलिस में दे दिया साब। पता चला कि अशर्फियां तो उसने रहन रखकर रातों-रात तीन सौ रुपे ले लिये और तीन सौ के तीन सौ जुए में हार गया। बड़ी मुश्किल से तीन सौ रुपे लाकर अशर्फियां छुड़ायीं और घर आकर आपके पास आने को निकला कि औरत ने ऐसा रोना शुरू किया कि सब लोग जमा हो गये। बच्चे भूख से रो रहे थे और वह खाना बनाने को तैयार नहीं थी ...

''तो क्या किया तुमने ?''

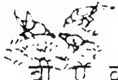
''बड़ी मुशकिल से इनिसपेक्टर शुक्ला को तीन-सौ रुपे खिलाकर केस वापस लिया। इसी सब में साब, तीन बज गये। तकलीफ़ माफ़ करना।''

मेरा सिर चकरा गया। यह कैसा आदमी है कि नमता ही जाता है! ''अब तुम्हारा साला कितने दिन और ठहरेगा ?''

''वह तो सुबू ही कहीं चला गया। औरत रो रही है - इंसान से ही गलती होती है। तुमने उसे डराकर भगा दिया। तुम्हारा भाई होता तो तुम ऐसा ही करते ? भगवान की इच्छा साब। अब आप चिन्ता मत करो।''

पंछी बावरा





उसे अभी तक वह दिन याद है। इम्तिहान होने में सिर्फ़ बीस दिन बचे थे। लेक्चर बन्द हो गये थे, मगर किताबें लेने या मुश्किलें पूछने या कभी-कभी सिर्फ़ तफ़रीहन दोस्तों से मिलने, या बोटॅनिकल गार्डन में सुनहरी कनेर के विशाल वृक्ष के नीचे लेटकर स्वप्न देखने मुकुल कॉलेज जाता था।

बी. ए. का सबसे तेज़ छात्र, कहीं से बिलकुल बच्चों की तरह था। उसका फॉरेस्ट ऑफीसर का लड़का होना समझ में आता था। मीलों लम्बे और मीलों चौड़े जंगल में उसका शैशव बीता है, यह चार दिन उसके साथ रहकर जाना जा सकता था। जिसके बारे में हरेक आदमी की राय यह हो कि वह निश्चित ही सरकार का कोई बड़ा अफसर बनेगा, वह केवल कविता में ही रस लेता हो तो समझदार लोगों को सुविधाभोगी समाज में विश्वास आना कठिन है।

वॉर्डन गिल साहब की इकलौती लड़की जो किसी लड़के से आँख उठा कर बात भी नहीं करती थी, यदि वार्डन साहब के सामने मुकुल को घर पर बुलाकर घण्टों बातें करती थी और चाय के प्याले पर प्याले पिलाती थी, तो निश्चित ही दूसरे लड़कों में उसका रौब-दाब तो बढ़ना ही था। वजह यह कि मुकुल में श्रेष्ठता के भाव के बदले हीनता का भाव था। स्पोर्ट्स के लिए मशहूर इस कॉलेज में जाने-माने सब लड़के खेल-कूद में जीत कर आनेवाले, लापरवाह कहकहे लगानेवाले थे, जबकि मुकुल किसी भी खेल में भाग नहीं लेता था और पाठ्य-क्रम के बाहर उसे सिर्फ़ डिबेट व एलोक्यूशन में दिलचस्पी थी। लड़कियों से बात करने में उसे पसीना आता था, हालांकि लड़के हँसकर कहते थे – "यह मुकुल, छुपा रुस्तम है, छुपा रुस्तम ! इंग्लॅण्ड में छह साल रहकर लौटे अंगरेज़ी साहित्य के मशहूर विद्वान गिल साहब आपको दामाद बनाने का स्वप्न देखते हों, तो क्या जरूरत है आपको ऐरी-ग़ैरी छोकरियों से बात करने की ! लकी मॅन !"

इस मत का कि वार्डन उसे अपना जमाई बनाने में खुश होंगे, आधार यह था कि हॉस्टेल में जब और लड़के एक दूसरे के कमरों मे जाते, ताश खेलते या गपशप करते, तब पढ़ाई से थका हुआ मुकुल कावेरी के साथ छत पर बॅडमिन्टन खेलता। खेल के बीच में से यदि कोई लड़का उसे बुलाता, तो वह खुशी-खुशी आ भी जाता। लड़कों की जबान में वॉर्डन की लड़की का फेवरिट होने का उसे कोई अभिमान न था। लड़के बुलाते उसे दो कारणों से। एक तो वह नक़ल उतारने में अद्वितीय था। खुद गिल साहब उससे अपनी नक़ल निकलवाकर देखते थे और दूसरे

हास्यरस की खुद लिखी हुई कविताएँ जानबूझ कर भोंड़ी बनायी आवाज़ में जब नक़ली शास्त्रीय संगीत में ढालकर वह गाता था, तो थके-से-थके आदमी की थकान पांच मिनट में निकल जाती थी।

यह सच है कि हमेशा हवा के घोड़ों पर चढ़ा, हंसी के फूल बिखराता मुकुल इधर तीन महीनों से जरा गंभीर हो गया है, हालांकि बॅडमिन्टन खेलना, नक़ल निकालना, भोंडी आवाज़ में हास्य की कविताएं गाना अभी भी पहिले जैसा ही था, पर मुकुल पिछले तीन महीने से उतना हाज़िरजवाब नहीं रहा था और उसकी हंसी नक़ली मालूम होने लगी थी। गिल साहब के एक बचपन के दोस्त का लड़का आलोक पारिवारिक बिज़नेस के कुछ मसले हल करने विलायत से आया हुआ था। और गिल साहब के साथ ही ठहरा था। जब मुकुल कमरे में पढ़ रहा होता और शाम तक पढ़ता ही रहता, तो कावेरी आलोक के साथ शॉपिंग करने चली जाती थी।

एक दिन पतझर की शाम को संध्या फूली थी और बहुत हल्की-सी बूंदा-बांदी होकर रुक गयी थी। आलोक और कावेरी छत पर थे, मगर भीगने का मज़ा लेने के बाद वह गीली छत पर बॅडमिन्टन नहीं खेल सकते थे। उन्होंने मुकुल को बुला लिया।

मुकुल ऊपर पहुंचा तो आलोक बोला - "आइये मुकुलजी। लिटरेचर व लॅन्वेज पर लंडन यूनिवर्सिटी के प्रो. विलकिन्स के नोट्स मैं आपको दूंगा। कभी भी आ जाइये। मेरे पास यहां हैं।"

मुकुल को मालूम था कि आलोक बहुत ही फिसड्डी किस्म का लड़का था, फिर भी बड़ी विनय से उसने कहा – "बहुत-बहुत धन्यवाद आलोक! एक-दो दिन में आकर मैं ले लूँगा।"

इतनी देर में जैसे ध्यान ही आकर्षित करने को कावेरी छत की चौड़ी पर गीली मुँडेर पर एक सिरे से दूसरे सिरे तक अपनी लचीली लम्बी देह को तैराती दौड़ने लगी। आलोक बेतहाशा अधीरता से चिल्लाने लगा – "कावेरी! छत गीली है! फिसल जाओगी।" मगर आलोक जितनी घबराहट व्यक्त करता, कावेरी उतनी ही ज़िद से दौड़ती। और वह भी ऊपर मुंह करके।

आलोक ने कहा – "मुकुलजी, आप कहिये ना!"

मुकुल बोला – "कावेरी! मज़ा आ रहा है ना! मैं भी आता हूँ!" और मुकुल अपनी चप्पल उतारकर जैसे एकदम तैयार ही हो गया।

कावेरी ने, दौड़ने की चाल धीमी करते हुए कहा – "पहले, विद्यापति पिक्चर दिखाने का वायदा आलोक करो, तब मैं रुकूंगी।"

आलोक ने वायदा किया और विजय के गर्व से मुंह लाल किये, वह नीचे आ गयी। खुश होकर उसने कहा – "मैं, प्रेमसिंह से चाय और नाश्ता ऊपर ही लाने को कहती हूँ, इसी बात पर!"

कहकर वह नीचे चली गयी।

आलोक जल्दी से धीमी आवाज़ में बोला - "यह टाल जाइये! मैं कहूंगा कि विद्यापति पिक्चर थिएटर से चली गयी है। और आप मुझे सपोर्ट करियेगा।"

मुकुल कहना चाहता था कि वह छोटी-छोटी बातों पर झूठ नहीं बोलता और यह नहीं कहना चाहता था कि कावेरी से तो हर्गिज़ नहीं, मगर इतनी देर में प्रेमसिंह हाथ में चाय की ट्रे और बिस्किट लेकर आ गया और बात वहीं रुक गयी।

"कितने बजे का मॅटिनी है?" कावेरी ने पूछा

"पिक्चर तो चली गयी, अभी-अभी मुकुलजी ने बताया!" आलोक बोला।

मुकुल ने नीचा मुंह किये धीरे से कहा - "मैंने तो ऐसा कुछ नहीं कहा!" इतने में गिल साहब ने किसी काम से कावेरी को बुला लिया। बात आयी-गयी हो गयी और रात को गिल साहब के ड्रॉइंगरूम में मुकुल ने अकेले में कावेरी को बताया – "मैं झूठ नहीं बोलता। आलोक ने मेरे नाम से झूठ बोला!" तो कावेरी ने झटके से कहा – "मालूम है!" अंदाज ऐसा था कि आप क्यों परेशान हो रहे हैं।

मुकुल को थोड़ा बुरा लगा और ठाकुर के उस लड़के की बात उसे याद आयी, जो उसने कॉलेज से घर आते-आते उससे कही थी - "मेरे मामा ने लव मॅरिज की है! मामी उनकी नाक में दम किये रहती है। ज़रा सम्हल के मुकुल। तुम खुद्दार आदमी हो।"

जीवन फिर वैसे ही चलने लगा। मुकुल पढ़ाई में ही लगा रहता था, मगर शाम को छत पर अभी भी बॅडमिन्टन चलता था और कावेरी की चांदी की घंटियों की सी आवाज़ अभी भी हवाओं में गूंजती थी। आलोक हिन्दुस्तान में ही तिजारत जमाने को आया था और मुख्य शाखा इलाहाबाद में जमाने वह वहां गया हुआ था।

उसे अभी वह दिन याद है। इम्तिहान होने में सिर्फ़ बीस दिन बचे थे। हॉस्टेल में खामोशी हो गयी थी और कावेरी के इम्तिहान शुरू हो गये थे। लायब्रेरी से लौटकर मुकुल चार बजे हॉस्टेल पहुंचा। कावेरी का भूगोल का पर्चा कैसा हुआ यह पूछने ऊपर चला गया। घर लौटती हुई दसवीं की कुछ लड़कियां बहस करती जा रही थीं कि भूगोल के परचे में सब आउट आव कोर्स, पाठ्यक्रम के बाहर का था। खुद 'सर' ने भी माना था। उस ज़माने में दसवीं की परीक्षा पास करके ही कॉलेज में प्रवेश मिलता था।

ड्रॉइंग रूम में कोई नहीं था। बल्कि शायद घर में भी प्रेमसिंह को छोड़कर कोई नहीं था। पंखा चला कर वह सोफ़ा छोड़ कर एक कुर्सी पर बैठ गया और सोफ़े पर बिखरी किताबें देखने लगा। भूगोल की किताब में जगह-जगह रेखांकित करके वेरी वेरी इम्पॉर्टेन्ट लिखा था। अन्दर एक कागज़ के टुकड़े पर दो शक्लें बनी थीं – पुरुषों की। एक पुरुष की मूँछें उसकी-सी थीं और दूसरे पुरुष के गाल पर के तिल से ही उसने अन्दाज़ किया कि वह शायद आलोक की थी। नीचे लिखा था – "अच्छा कौन? बुद्धू या ढोंगी?" दुनिया की नज़रों में ढोंगी, मगर मेरी नज़रों में बुद्धू।"

मुकुल ने अपनी कल्पना पर भरोसा करके बहुत गर्व का अनुभव किया। फिर राज कपूर के चित्र की एक कतरन पर लिखा था – "मुझे इस तरह की शक्ल पसन्द है।"

मुकुल एक प्रशान्त आनन्द में डूब गया। फिर उसने आंख बन्द कीं और बैठे-बैठे सो गया। आजकल इम्तिहान की तैयारी में वह केवल चार घंटे सोता था।

चार बजे वह आया था। न उसने खाना खाया था न चाय पी थी। भूख बहुत ज़ोर की लग रही थी। मगर एक अजीब निष्क्रियता-सी उस पर हावी थी। एक सुखद थकान और आत्म-विश्वास में दुनिया उसे जीती हुई लग रही थी। दूर एक रेकर्ड बज रहा था –

चांद से प्रीत लगाये पंछी बावरा!
छाया देख नदी में मूरख फूला नहीं समाये,
वह हरजाई तारों के संग अपनी प्रीत लगाये।

कहीं से अनजाने वह इस गाने के बारे में सोचता और किताबें उलट-पुलट करने लगा। बड़ा-सा एटलस नीचे गिरा तो उसे उठाकर वापस रखने में एक बहुत-बड़ा एक्सरसाइज़ बुक के बीच में से फाड़ा काग़ज़ नीचे गिरा। उसे वापस रखने को मुकुल ने उठाया। उस पर कुछ लिखा था। वह एक खत था। शायद यों ही कुछ ऊलजलूल समझकर वह उसे पढ़ने लगा।

3 मार्च, उज्जैन

प्रिय आलोकजी,

आपके जाने के बाद से हम बहुत बोर होने लगे हैं। आप वापस कब आयेंगे? चार दिन में हमारे एक्ज़ाम भी खतम हो जायेंगे। हम तो बहुत-बहुत बहुत बोर होंगे। आप क्या करते रहते हैं? आपको याद होगा कि 27 मार्च को हमारी वर्षगाँठ है। आपके न आने से हमारी वर्षगाँठ एकदम खराब हो जायेगी। इसलिए ज़रूर ज़रूर ज़रूर आइयेगा। पत्र का उत्तर फ़ौरन दीजियेगा।

आपकी ही कावेरी।

थोड़ी देर स्तम्भित-सा मुकुल खिड़की में से दिखते आसमान पर सफ़ेद बादल के टुकड़े को देखता रहा। जैसे एक बहुत चहल-पहल से भरे विशाल समृद्ध नगर को एक भयानक भूकम्प नष्ट-भ्रष्ट कर दे और वह भी तब, जब उसके सब नागरिक अपना राष्ट्रीय उत्सव मनाने को नाच-गा रहे हों।

उसने अपने आप में एक भयावह सुनसान वीरानगी का अनुभव किया। धीरे-धीरे उठकर वह नीचे आया, वार्डन को एक पत्र लिखा कि कॉलेज के पीछे ही अपने फूफा ताटके साहब के घर में रहना उसके लिए अधिक सुभीते का होगा। रात को देर तक पढ़ने से वह सुबह जल्दी नहीं उठ पाता और रोज़ परचे में उसे देर हो जाती है। बहुत देर उनका इन्तज़ार करके भी उनके न आने से वह उनसे नहीं मिल सका, इसलिए हॉस्टेल के गुरखे को वह यह पत्र देकर जा रहा है।

मालूम नहीं कि उसके बाद वह गिल साहब से मिला कि नहीं मगर परीक्षाफल निकलने पर सबको अन्यन्त आश्चर्य हुआ कि वह तीसरे दर्जे में पास हुआ है।

(2)

खरगोन के नये पोस्ट मास्टर श्री मुकुल दुबे को सब बहुत प्यार करते हैं। अकेले हैं और पोस्ट आफिस के मनी ऑर्डर के काउन्टर पर बैठनेवाले निहालसिंह के यहां ही सुबह का खाना खाते हैं। निहालसिंह की पत्नी ने किसी कारण से उसे छोड़ दिया है। उसकी बहन उमा जो बाल विधवा है, बहुत अच्छा खाना बनाती है।

पोस्ट मास्टर साहब उसकी पाककला से तो प्रसन्न हैं ही, उसके स्वभाव से भी बहुत प्रभावित हैं। 11 वर्ष की अवस्था में ही बिना पति के घर गये ही बाल-विधवा हो जानेवाली उमा हमेशा हंसती ही रहती है। विधवा होने के बाद अपने पिता के एक बहुत गहरे दोस्त 74 बरस के मौलवी इरफ़ान अली साहब से उसने उर्दू पढ़ी। अपने पिता शैलेन्द्र सिंह से संस्कृत पढ़ी। रात-दिन भाई की सेवा और अतिथि-सत्कार में उसका समय बीतता है।

वहां मुकुल की ही उम्र का मनोहर नाम का एक लड़का आता है, जो बसें चलाता है। रविवार को निहालसिंह व मुकुल के सुबह के खाने में वह भी शरीक हो जाता है। उसके पास एक सॅकिंड हॅन्ड मोटर भी है। उमा उसकी पसन्द की चीज़ें बना कर अक्सर उसे बुलाती है। वह भी अपने बगीचे के बड़े-बड़े सीताफल उमा के लिए लाता है।

न मालूम क्यों वह पोस्ट मास्टर साहब के यहां भी सीताफल व पपीते ले जाने लगा। एक दिन पन्द्रह अगस्त की छुट्टी पर उसने सुबह का खाना खाने सबको बुलाया। मुकुल दुबे निहालसिंह के यहाँ आ गये और वहां से निहालसिंह, मुकुल

दुबे व उमा तीनों ही साथ निकले। उमा ने मनोहर की पसन्द की गोभी की खीर बनाकर साथ ले ली। खाना और गप्पें खूब जमीं। उस दिन पहली बार मुकुल दुबे ने उमा का गाना सुना। मनोहर की उपस्थिति में उमा का व्यक्तित्व जैसे उभर कर सामने आता था। उस दिन भी वह सफ़ेद ही साड़ी पहिने थी, मगर एक बहुत बड़ा चांदी का ब्रूच उसने लगाया था।

गाने में शाम हो गयी और चलने का वक्त आ गया। यह लोग खड़े हुए कि मनोहर ने बड़े आग्रह से कहा – "मेरी बहुत पसन्द का गीत गाये बिना जाओगी उमा ?"

उमा ने दो सेकंड उसकी तरफ़ देखा और हारमोनियम फिर खोल लिया –

चांद से प्रीत लगाये पंछी बावरा।
छाया देख नदी में मूरख फूला नहीं समाये ...

गाना खतम हुआ तो पोस्ट मास्टर साहब जैसे खो गये। पाँच मिनट में फिर ठीक हो गये। वैसे ही हँसने-बोलने लगे। उमा से पूछा – "आप इन्हें खूब जानती हैं ना ? इनकी पत्नी तो बोलती ही नहीं। हाँ या ना में ही उत्तर देती हैं।"

उमा ने कहा – "यह बहुत लम्बी कहानी है। फिर कभी सुनाऊंगी।"

शाम को खाने पोस्ट मास्टर साहब गये तो बदले हुए थे। निहालसिंह सब्ज़ी लाने गया था। उमा ने स्वागत किया। बड़े उत्साह से बोले – "आपने गाना सीखा है ? बहुत गज़ब का गाती हैं आप !" उमा ने सलज्ज 'धन्यवाद' कहा।

अब तो प्रायः रोज ही शाम के खाने के बाद गाने का प्रोग्राम होने लगा। मुकुल दुबे प्रायः हर रोज़ एक गाना फ़रमाइश करके सुनते थे – "चांद से प्रीत लगाये, पंछी बावरा !"

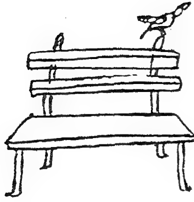
एक दिन उमा ने उनसे पूछा – "यह गाना किसी खास कारण से आपको बहुत पसन्द है ?" "फिर कभी बताऊंगा !" कहकर मुकुल दुबे हंस दिये।

छह महीने बाद सारे डाकखाने में उत्सव हुआ। पोस्ट मास्टर साहब की शादी निहालसिंह की विधवा बहन से हो गयी। खाने की तकलीफ़ दूर हुई, गाने का शौक़ पूरा हुआ और ज़िन्दगी चलने लगी।

मगर न तो उमा और न मनोहर ही यह बता सकते थे कि जीवन एकदम निरुपाय और विषादमय क्यों हो गया। अब निहालसिंह पोस्ट मास्टर के यहां खाता था। छुट्टी के दिन मनोहर के बुलाने पर जब पोस्ट मास्टर साहब ने जाना अस्वीकार किया तो और लोग भी नहीं गये।

न जाने क्यों मनोहर से सम्बन्ध टूट गया और उसका यहां और इन लोगों का उसके यहां जाना बन्द हो गया।

निर्णय आपका



उस दिन आश्रम के अपने साथ के ब्रह्मचारियों को जब मैंने यह कहानी सुनायी, तो बाद में मैंने उन्हें आपस में जो बातें करते सुना वह बड़ी मज़ेदार थीं। ज़्यादातर वह एक-दूसरे से दबी ज़बान में यही प्रश्न कर रहे थे कि स्वामीजी हमेशा विषयी लोगों की कहानी क्यों सुनाते हैं। मैं मन-ही-मन यह सोचता रहा कि विषयी लोगों की कहानी से जो घबराता है, उसमें वैराग्य का पूर्णतः अभाव है। यह संसार और इसका सब व्यापार, इसके सब सुख मूलतः विषयों की ही भूमि हैं। जब आदमी को समझ आती है तब वह सुख का, गौरव का, भोग का रहस्य समझता है। इस पर सुन्दरदासजी का अभिमत दृष्टव्य है –

इन्द्रानी शृंगार करि चन्दन लगायौ अंग
वाहि देषि इन्द्र अति काम बस भयौ है।
सूकरी हू कर्दम के चहले में लोटि करि
आगै जाइ शूकर कौ मन हरि लयौ है।
जैसे सुख शूकर कौ तैसी सुख मधवा कौ
तैसौ सुख नर पशु पंषिन को दयौ है।
सुन्दर कहत जाकै भयो ब्रह्मानन्द सुख
सोई साधु जगत में जन्म जीति गयौ है।

खैर, छोड़िये। जिसे ब्रह्मानन्द इत्यादि हुआ हो, वही इस पर बहस करे। मुझे तो बचपन से एक ही बात लगती थी कि जो सुखी समझे जाते हैं, वे क्या वास्तव में सुखी हैं। भोग उपलब्ध होने से क्या सुख उपलब्ध होगा?

इसका निर्णय मैं अभी तक नहीं कर पाया। एक तो भोग मुझे उपलब्ध नहीं हुए और वैराग्य से तो सर्वथा वंचित हूँ ही। एक ऐसे व्यक्ति की कहानी मैंने सुनायी थी, जो सत्य के लिए सब कुछ न्यौछावर करने को प्रस्तुत था....

दूर से रिश्ते में मेरे चाचा होते थे भास्करराव। ऐसे कुल में जन्मे थे, जिसमें तीन पीढ़ियों से लोग बड़े-बड़े ओहदों पर रहे थे। उनके एक चाचा बड़ी-बड़ी रियासतों के दीवान थे, दूसरे चाचा कलक्टर थे, तीसरे चाचा पहिले भारतीय थे, जिन्हें एलची बनाकर अंगरेज़ी सरकार ने विलायत भेजा था। होलकर रियासत में महेश्वर के पास उनकी ज़मीदारी थी - तीस घोड़े उनके अस्तबल में थे और बड़े भाई फ़ौज में बहुत बड़े अफ़सर थे। साल में दो बार वह ज़मीदारी पर जाया करते थे और लगान जैसी चीज़ सिर्फ़ तभी लिया करते थे, जब किसान लगान खुशी-खुशी दे सकें। जब

फ़सल अच्छी होती तो एक भोज काश्तकारों को मैदे की पूरी, आलू की भाजी और बूरापड़े दही का दिया जाता था। भोज में बूढ़े काश्तकारों को वह स्वयं राम-राम कहते थे और छोटे काश्तकार उनका चरण-स्पर्श करते थे। ऐसा ज़मीदार तो न पहले हुआ और न आगे होने की संभावना थी। गोरे-चिट्टे छह फुट के भास्करराव बन्दूक ही नहीं पिस्तौल चलाने में भी निरुपम थे। छह फुट की दूरी से छोटी पिस्तौल से बागड़ की तार पर बैठी पिद्दी मार सकते थे। एक हरिद्वार के संन्यासी से उन्होंने मन्त्र भी लिया था और शिवजी के बहुत भक्त थे। जब अपने गुरु से उन्होंने कहा कि उन्हें क्रोध बहुत आता है तो उनके गुरु ने हँस कर कहा – "अब शिव के उपासक को क्रोध आये तो केवल काम का नाश करेगा। चिन्ता न करो। नाम लिए जाओ। अपनें सम्बन्ध में सब निर्णय उन्हीं पर छोड़ दो।"

उनकी शादी हुई थी नाभा रियासत के दीवान की सबसे बड़ी लड़की से, जिसे एक अंगरेज़ गवर्नेस ने पढ़ाया था। जब परिवार शिमला जाता था, वहां के बेबी-शो में हमेशा उस लड़की रोज़ी को सर्वश्रेष्ठ सेहत पर प्रथम पुरस्कार मिलता। शादी के बाद नवीन दम्पति अपनी ज़मीदारी पर गये, जहां कत्थे के बहुत जंगल होने के कारण भास्करराव एक कत्था बनाने की फ़ॅक्टरी खोलना चाहते थे।

उनके दबदबे से जलनेवाला एक खटीक लालाराम रोज़ उनके सरसों के खेत में अपनी चार बकरियां छोड़ देता था। भास्करराव एक दिन सुबह अपनी नववधू रोज़ी को लेकर घूमने गये, तो देखा कि सरसों के लहलहाते खेत में लालाराम की चार बकरियां कुदक-कुदक कर सरसों के नये फूल खा रही हैं और लालाराम मेड़ पर बैठा हथेली पर तमाखू मसल रहा है। आगबबूला होकर चिल्लाये – "लालाराम !" झट, झूठी विनम्रता से हाथ जोड़कर वह सामने आ गया – "सरकार !" "यह रोज़-रोज़ बकरियां मेरे खेत में कैसे आ जाती हैं ?" झूठी विनय से लालाराम ने कहा – "सरकार, जनावर को क्या समझ होये है ?" "तुम उन्हें रोक नहीं सकते ?" उन्होंने पूछा। "सरकार, चार-चार बकरिन को एक आदमी रोक सके है। देखिये, ले जाता हूँ आपके सामने हकाल कर" और वह अपनी बकरियों को हकालने लगा। रोज़ी ने दूर से अंगरेज़ी में कहा – "यह बड़ा ढीट हो गया है। तुम्हें कुछ समझता ही नहीं !" बकरियों को लेकर जाते हुए लालाराम को भास्करराव ने ज़ोर से डाँटकर चेतावनी दी – "अब तुम्हारी बकरियां मेरे खेत में घुसी तो पिस्तौल मार दूंगा !" बकरियों को वैसे ही छोड़कर लालाराम आया और उनके बहुत पास आकर बोला – "अपना पिस्तूलवा लेकर लालाराम को डराये है। नासमझ जनावर क्या जानें बेचारे ! और हाथ जोड़कर ले तो जाय रहे हैं।"

रोज़ी ज़ोर से हंस पड़ी। भास्करराव ने पिस्तौल निकाल ली और लालाराम की ओर दिखाकर बोले – "एक लफ्ज़ भी बोला तो समझ ले तेरी जान आज गयी!" "अय हय, पंडतवा पिस्तूलवा जेबवा में रख लिया कर जब लालाराम से बात करे।" और भास्करराव ने पिस्तौल चला दी।

चौबीस घण्टे में गवर्नर से मिलकर भास्करराव ने अपनी पत्नी रोज़ी सहित हवाई जहाज़ से स्विटज़रलॅन्ड की राह ली। सरकार के इशारे पर केस खारिज हो गया और कोर्ट ने फैसला दिया कि गोली तब चलायी गयी, जब मशहूर गुण्डे लालाराम ने भास्करराव को मारने को चाकू निकाल लिया था।

चार साल यूरोप में घूमकर जब भास्करराव रोज़ी को लेकर वापस लौटे, तो ग्वालियर रियासत में शिवपुरी के लाल बजरी वाले रास्तों पर उनकी लाल रंग की कोठी दूर से देखी जा सकती थी। वहां की कोठी पुरानी थी और कई दिनों से वह बन्द पड़ी थी और सेहत के ख्याल से ही उन्होंने वहां रहने का इरादा किया था। उन्हें टी. बी. हो गया था। बीवी को प्यार करने के नये-नये कायदे से वे बीवी से बात करते हुए कान बिलकुल उसके मुंह के पास ले जाते थे। बीवी मुखशुद्धि के लिए मेमों की खानेवाली एक सुगन्धित चौकोर छोटी मीठी 'सेनूसेन' नामक वस्तु खाती रहती थी और यह उसके पास बेंत की कुरसी पर बैठे बम्बई का अखबार टाइम्स पढ़ते रहते थे। सेहत सुधर रही थी हालांकि सभी जानते थे कि टी. बी. का कोई इलाज स्थायी रूप से नहीं था। वह सन 1933 की बात है।

थोड़े ही दिनों में रोज़ी का दिल उस छोटी जगह से ऊब गया और उसने बात-बात पर पति पर झल्लाना शुरू कर दिया। इतने गुस्सैल, इतने खुद्दार भास्करराव कभी-कभी इतना अपमानित महसूस करते कि गुस्से से होंठ काट लेते, पर किसी बड़ी जगह चले जाने के अलावा कोई विकल्प न रहा। एक दिन ये लोग बम्बई आ गये और मरीन लाइन पर एक फ्लॅट लेकर रहने लगे। बावजूद सब विरोधी शक्तियों के बम्बई के इलाज से या आबोहवा बदलने से उनकी सेहत सुधरने लगी। बम्बई के एक छोटे-से उपनगर में एक और छोटा-सा मकान ले लिया गया, जहां केवल एक रसोइये को लेकर यह जाकर रहते थे। शिवजी की उपासना में अधिक आनन्द आने लगा।

मरीन लाइन के उस फ्लॅट में अब जवान और कुशल डाक्टर अधिकतर शाम को मिलने लगे। शुरू में मक़सद था उनकी सेहत पर बहस करना, मगर धीरे-धीरे बोतलें भी खुलने लगीं और रोज़ी ने खाना बनाने को कश्मीर के एक प्रसिद्ध रसोइये को बुला लिया। रोज़ी राव की दावतें मशहूर हो गयीं और भास्करराव के मर्ज़ को

ठीक करने आनेवाले डाक्टर खुद मरीज़ बन गये और इतने मरीज़ों का ठीक-ठाक इलाज सिर्फ़ रोज़ी ही कर सकती थी।

बमभोले के ध्यान में मग्न यह खुश होते थे जब रोज़ी किसी बहुत बड़े डाक्टर को लेकर बम्बई के उपनगर में इनसे मिलने आती थी – "देखो, मैं बॉम्बे के लीडिंग फ़िजिशियन डा. मालकम को लायी हूँ।" डा. मालकम इनकी जांच करके कहते – "आप तो जैसे जादू से ठीक हो रहे हैं। क्राइस्ट की कृपा है। मरीन लाइन्स की हवा अभी आपके लिए खतरनाक है। अगर प्रोग्रेस ऐसी ही रही, तो आप साल-भर में एकदम ठीक हो जायेंगे।" फिर हंसते और धन्यवाद देते। जिस ढंग से रोज़ी के साथ डा. मालकम चले जाते, उससे भास्करराव को क़ाफी परेशानी होती। जब एक दिन रोज़ी को अलग ले जाकर उन्होंने बहुत ही दीन बनकर उससे विनय की – "डार्लिंग, हफ्ते में एक दिन तुम मेरे साथ रहो तो मैं एकदम ठीक हो सकता हूँ", तो रोज़ी कुछ ख़फ़ा-सी होकर बोली - "बचपना मत करो भास्कर ! इन डाक्टरों को तुम तक लाना ज़रूरी है। और यह डॉक्टर कभी दिलचस्पी नहीं लेंगे, अगर मैं मरीन लाइन से हट गयी। डा. मालकम तो अंगरेज़ों को छोड़कर हिन्दुस्तानियों को देखते ही नहीं। मगर दोस्ती में दौड़े-दौड़े यहां आते हैं। अगले सन्डे को मैं डाक्टर नन्दी को लानेवाली हूँ, जो संसार के सर्वश्रेष्ठ टी. बी. के डाक्टरों में माने जाते हैं।"

दबी ज़बान से भास्करराव ने कहा – "मैं जानता हूं रोज़, तुम कितनी तकलीफ़ उठा रही हो। तुम्हारी पर्सनॅलिटी की वजह से ही मेरा इलाज इतना अच्छा हो रहा है। मगर डार्लिंग, मुझे तुम्हारी बहुत याद आती है।"

मुस्कुराकर उन्हें बांहों में भरकर रोज़ी कहती – "और कुछ दिनों की बात है डार्लिंग ! मैं अगर आ भी जाऊं तो तुम मुझसे दूर न रह सकोगे और इस तरह मैं तुम्हारी मौत बन जाऊंगी।"

भास्करराव ने बच्चों की तरह कहा – "एक बार मौक़ा तो दो। मैं भगवान शिव की साक्षी देकर कहता हूं कि मैं तुमसे दूर रहूंगा।"

खिलखिलाकर रोज़ी ने कहा – "तुम्हें ऐसा लगता है। मगर तुम अगर नहीं भी मेरे पास आये तो क्या मैं इतनी बूढ़ी हो गयी हूं कि तुमसे दूर रह सकूं। नहीं भास्कर, अभी थोड़े ही दिन की बात है। अपने को अकेला मत समझो। लॉर्ड शिवा तो तुम्हारे साथ है। लॉर्ड शिवा खुद। अकेला क्यों कहते हो अपने को।"

भास्करराव चुप हो गये। मन लगाने को उन्होंने एक योजना बनायी। उस मकान के कम्पाउंड में वह एक शिवजी का मंदिर बनवायेंगे, जिसमें सब लोग आ-जा सकेंगे और प्रभु ने चाहा तो वह शाम को कीर्तन का आयोजन करेंगे।

मंदिर बनना शुरू हो गया। टाइल्स बेलजियम से मंगायी गयी और शिवलिंग व अन्य कुछ मूर्तियां जयपुर से। ज़ोरों से काम चलने लगा और अड़ोस-पड़ोस के लोग आते-जाते मंदिर को देखकर खुश होने लगे।

भास्करराव के पड़ोस में रहनेवाले एक वकील खण्डेराव सकपाल बहुत ही मौहब्बती आदमी थे और प्रायः रोज़ शाम को उनके पास आकर बैठा करते थे। डा. अम्बेडकर को गुरु माननेवाले खण्डेराव ने एक दिन इनसे कहा – "हम लोग अछूत हैं। मेरी वाइफ़ आपके लिए कभी-कुछ बनाकर लाना चाहती है, तो मैं मना कर देता हूँ। आप तो कर्णाटक के उच्च कोटि के ब्राह्मण हैं। मैं नहीं चाहता कि मेरे कारण आपकी जात जाये।"

भास्करराव बहुत भाव-विह्वल होकर बोले – "खण्डेराव साहब, मैं उन नीच हिन्दुओं में से नहीं हूँ जो मनुष्य-मनुष्य में भेद करते हैं। बल्कि आप अगर तैयार हों तो अपने मंदिर की ओपनिंग भी मैं आपसे ही करवाना चाहता हूँ। मैं जब से यहां आया हूँ आपने सगे भाई से ज़्यादा प्यार मुझे दिया है। मेरे जातभाई या और दूसरे ब्राह्मणों ने मुझे क्या दिया है। अगर मुझे छूत की इतनी भयानक बीमारी न होती, तो मैं रसोइये को निकाल देता और रोज़ अपनी भाभी के हाथ का खाना सामने बैठकर आपकी रसोई में ही खाता। बशर्ते कि एक ब्राह्मण को आप अपनी रसोई में बैठने देते।"

लगभग रुंधे कंठ से खण्डेराव बोले – "क्या बात करते हैं आप पंडितजी। आपको तो मैं बड़ा भाई समझता हूँ। किसी पूर्व जनम के पापों के कारण ही भगवान ने मुझे अछूत बनाकर पैदा किया है, नहीं तो मैं आपको ठीक किये बिना नहीं छोड़ता।"

खैर, तय यह हुआ कि भास्करराव इतवार को खण्डेराव के यहां मालवणी मसाला डालकर बनाया हुआ गोश्त खाने लगे और उन्हें लगने लगा कि सचमुच वह खण्डेराव के छोटे भाई हैं।

मंदिर बन गया और बिना किसी घोषणा के भास्करराव ने प्रथम अभिषेक खण्डेराव से करवाया। सनसनी फैल गयी और लगा कि जैसे बहुत बड़ा विस्फोट होनेवाला है।

हुआ कुछ नहीं मगर वहां के ब्राह्मणों ने मंदिर में आने या प्रसाद लेने से एकजुट इंकार कर दिया। खण्डेराव ने बहुत रुंआसे स्वर में कहा – "मैं बोलता नहीं था भाऊ ! इतना पैसा बिगाड़ा और मंदिर बनाया और सब फोकट गया।"

भास्करराव ने चिढ़कर कहा - "मरें साले सब। यह मंदिर मेरे शंकर भगवान

का है। यह मंदिर मैंने अपने लिए और अपने रिश्तेदारों के लिए बनवाया है और तुमसे बड़ा मेरा कौन रिश्तेदार हो सकता है खण्डेराव।"

मगर जो सेहत सुधरनी शुरू हुई थी, वह रोग का एक फरेब था। भास्करराव को रात को नींद नहीं आती थी और रोज़ी भी अब हफ्ते में एक बार के बदले, पन्द्रह दिन में एक बार आती थी। उसकी सफ़ाई यह थी कि वह बहुत थक जाती है घर की देख-भाल से और डॉक्टरों के पीछे-पीछे भागने से।

अन्ततः भास्करराव ने यह निश्चय किया कि वह मरीन लाइन वाले फ्लॅट में ही जाकर रहेंगे – जियें चाहे मरें। खण्डेराव व उसका कुटुम्ब बहुत रोया और जब उन्हें लेकर टॅक्सी चलने लगी, तो खण्डेराव, उनकी पत्नी और बच्चे टॅक्सी के आस-पास खड़े रो रहे थे। तआज्जुब कि भास्करराव कि आंखों से भी लगातार आंसू बह रहे थे, मगर अब उनका मन रोज़ी को अकेला छोड़ने का नहीं था। मंदिर की चाभी खण्डेराव को देते हुए तो दोनों बच्चों की तरह रो पड़े।

मरीन लाइन पर आने के बाद भास्करराव ने देखा कि फ्लॅट सैंकड़ों ताज़े लाल गुलाबों से महक रहा है। सोफ़े के कवर और बड़ी-बड़ी खिड़कियों के पर्दे बदल गये थे – गहरे नीले रंग के मखमली परदों से वहां दिन में भी अंधेरा रहता है।

पहिले दो दिन भास्करराव इस ग़लतफहमी से बहुत खुश रहे कि उनके लिए प्रसन्न वातावरण निर्माण करने में रोज़ी कितनी मेहनत करती है ,मगर फिर राज़ खुल गया। दूसरे कमरे में रोज़ी डाक्टर मालकम के साथ घंटों बातें करती, तो भास्करराव चिल्लाकर कहते – "डार्लिंग, इस कमरे में आकर बात करो ना तुम लोग। अकेले में मेरा जी घबराता है।"

रोज़ी उसी कमरे से चिल्लाकर कहती – "डाक्टर कहते हैं कि रोगी के सामने उसके रोग की चर्चा कभी नहीं करनी चाहिए। तुम्हें सोना चाहिए। खुश रहना सबसे बड़ी दवा है।"

और इसी तरह दो महीने भी न बीते होंगे कि एक दिन बड़े सवेरे उनको साँस लेने में तकलीफ़ होने लगी। डाक्टर मालकम और डाक्टर नंदी दोनों आये और उन्होंने एक इन्जैक्शन देना तय किया। एक बार रोज़ी की ओर देखकर उन्होंने कुछ कहने की कोशिश की, मगर फिर एक बार जोर से "ॐ नमः शिवाय" कहकर वह ढुलक गये।

डा. नंदी ने रोज़ी से हाथ मिलाते हुए कहा – "आय एम सॉरी रोज़ी, मैं तुम्हारे हब्बी को बचा नहीं सका।"

रोज़ी ने बहुत उदास स्वर में धीरे-धीरे रुक-रुक कर कहा –

जो मैं ऐसा जानती, प्रीत किये दुख होय।
नगर ढिंढोरा पीटती, प्रीत न करिये कोय।

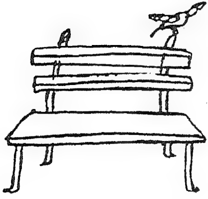
श्मशान ले जाते-जाते चार बज गये। बिल्डिंग के और लोगों ने और सब डाक्टरों ने भी मदद दी। रात के दस बजे तक हमदर्दी की वजह से वे रोज़ी के साथ ही रहे। उसे बहुत समझा-बुझा कर उन्होंने खाना खिलाया और खुद भी वहीं खाया।

खण्डेराव को चौथे दिन मालूम हुआ, जब वह अस्पताल से अपनी गाड़ी तक जाते डा. नंदी से मिला। उस दिन वह कचहरी न गया। दूसरे दिन सुबह-ही-सुबह वह मंदिर की चाभी लेकर रोज़ी को देने पहुंचा।

रोज़ी ने उदास स्वर में कहा – "थैंक यू खण्डेराव। जिस देवता ने मेरा देवता मुझसे छीन लिया, उसके मंदिर की चाभी लेकर मैं क्या करूँगी?"

अब यह निर्णय करना आप पर है कि भास्करराव पर शंकरजी ने कृपा की या वे तटस्थ रहे।

गोरे मास्टर का भूत



अगर 1930 से 1935 के बीच आप छावनी के मशहूर संयोगितागंज हाई स्कूल मे पढ़े हों, तो हो नहीं सकता कि आप को इस बात का गर्व नहीं हो। संयोगितागंज हाई स्कूल इंदौर का मशूहर स्कूल था और एस. जी. एच. एस. के नाम से मशूहर था। ज़रा - ज़रा- सी बात पर वहां बेंत लगते थे। कम्पस बॉक्स न ले जाने पर एक बेंत, क्लास में बात करने पर दो बेंत, स्कूल की दीवार पर लिखने पर चार बेंत, और इस तरह हर अपराध पर बेंत की संख्या वैसे ही नियत थी, जैसे अलग- अलग जगहों का किराया नियत होता है। स्कूल का बहुत बड़ा कम्पाउंड था और सब तरफ़ पैरेलल बार्स लगे थे, जिन पर पानी पीने को जाते हुए या एक क्लास से दूसरी क्लास में जाते हुए लड़के वर्ज़िश कर लिया करते थे। स्कूल को अपने विद्यार्थियों की शारीरिक प्रवीणता पर गर्व था। रियासत - भर में एस. जी. एच. एस. के बराबर कोई स्कूल मारामारी में प्रसिद्ध नहीं था। वह आजकल अमीर आदमियों के बच्चों के पढ़ने के स्कूलों - यानी कान्वेंटों से एकदम अलग। एक तो उसमें हर वर्ग के लड़के पढ़ते थे और हिन्दी भाषियों का तो वह सर्वश्रेष्ठ स्कूल समझा जाता था, यद्यपि उसमें गुजराती और मराठी विभाग भी थे। खेलकूद में स्कूल के लड़के सबसे अव्वल थे। और हाँ, बावजूद सब बातों के ड्रॉइंग में हमारे यहां के विद्यार्थी इलाक़े-भर में सबसे प्रवीण थे। हमें गर्व था कि इन्दौर की महारानी संयोगिताबाई जिनके नाम से स्कूल था, स्वयं महाराष्ट्र की लाँघ लगाकर पहिननेवाली नौवारी साड़ी पहिनकर लड़कों के साथ क्रिकेट खेलती थीं। इस स्कूल में जब मुझे पाँचवीं क्लास में भरती किया गया तो और लड़कों से एकदम भिन्न होना मेरे लिए स्वाभाविक था। सरकारी अफ़सर का लड़का होने के कारण घर पर मास्टर रखकर मुझे पांचवी क्लास तक पढ़ाया गया था। छोटी उम्र में स्कूल न भेजे जाने से मेरे चरित्र में एक अधूरापन था। दूसरे एक तरह की नवाबी नम्रता के अलावा एक प्रकार की ख़ानदानी खुद्दारी मेरे हर प्रकार के व्यवहार में झलकती थी, जो उस स्कूल के सत्तर प्रतिशत लड़कों को हास्यास्पद लगती थी। काश, कि उन लोगों को आप जानते होते। स्कूल के चार सबसे लम्बे लड़कों में एक था सुन्दरलाल स्वस्तिक। पिता की पान की दुकान थी और फुटबॉल में सेन्ट्रल फॉरवर्ड खेलनेवाले खिलाड़ी होने के कारण उसने अपने अनाम घराने को 'स्वस्तिक' नाम दे डाला था। नाई का लड़का था, जिसका नाम किसी को नहीं मालूम था और गो लड़के उसे बहुत

प्यार करते थे, मगर कहते थे नौआ, ही। एक किसी रिटायर्ड संस्कृत कायस्थ ख़ानदान का लड़का था, - ईश्वरदयाल जो सब लड़कों में 'चिकना' के नाम से प्रसिद्ध था। पंसारी का लड़का मोहनलाल अपने अर्थ-गौरव में धोती के ऊपर बंद - गले का सफ़ेद लम्बा कोट पहिनकर आता था। और बहुत ही दुबला - पतला आबनूस से भी काला हमारे यहां का कुश्ती का चैमपियन था, जिसके लम्बे लचीले शरीर में असीम दांव-पेंच छिपे थे। पहिले ही दिन जहां अखाड़े में एक दम महीन रेत बिछी थी, लड़कों ने मुझे श्याम से लड़वाकर मेरी परीक्षा ली थी, मगर यह एक बिलकुल ही अलग दास्तान है। आत्म-रक्षा में मेरे जैसा घरेलू लड़का इसलिए और भी अलग बन गया था कि क्षत्राणी मां ने अपने स्वभाव और सिद्धान्त के अनुसार स्कूल के पहिले ही दिन यह हुक्मनामा जारी किया था कि यदि स्कूल से मार खाकर घर आये तो और भी ज़्यादा पिटाई होगी।

अंगरेज़ी तो हमारे घर में रात-दिन बोली जाती थी , यद्यपि सुबह- शाम दोनों समय राधेश्याम की रामायण और गीता भी एक-एक घंटा पढ़ी जाती थी। इसलिए अंगरेज़ी फ़रटि से बोलने के बावजूद रेन और मार्टिन के प्रसिद्ध अंगरेज़ी व्याकरण से मैं जी चुराता था। आठवीं क्लास तक परचों में व्याकरण के आठ अंकों को छोड़ देने पर भी व्याकरण में मेरे 100 में से 80 अंक आते थे। इसलिए व्याकरण पढ़ाने वाले शिक्षक व्याकरण में मेरी अरुचि पर ध्यान नहीं देते थे ।

व्याकरण में इसी अरुचि के कारण आठवीं क्लास में रेसिंग सायकिल पर असाधारण रूप से ऊँची सीट कराकर सवार होकर आनेवाला फ़ीरोज़ जे. मोतीशाह मेरा मित्र बना और मुझे यक़ीन है कि , आज जैसे पचास-साल बाद मैं उसकी याद करता हूं वह भी करता होगा।

फ़ीरोज़ भी सम्पन्न पारसियों की तरह अंगरेज़ी में बहुत अच्छा था और शिक्षक जैसे व्याकरण में मेरी अरुचि को अनदेखा कर जाते थे, वैसे ही उसको भी विश्वस्त भाव से अनदेखा कर जाते थे। क्लास में मेरे बाद अंगरेज़ी में उसका नम्बर था यद्यपि एक विशेष घटना न हुई होती, तो शायद हम कभी नज़दीक न आये होते।

मालूम नहीं हमारे क्लास टीचर के रूप में गोरे सर कहां से तबादले की हवाओं पर चढ़कर आ गये थे। डिसिप्लिन और विधिवत काम करनेवालों में महाराष्ट्रीय ब्राह्मणत्व के प्रतिनिधि। यद्यपि उनकी अंगरेज़ी बहुत किताबी थी और अंगरेज़ी में अच्छी हमारी क्लास को बहुत ही उपहासास्पद लगती थी, फिर भी रेन या मार्टिन की व्याकरण कई साल पढ़ाने के कारण उन्हें कण्ठस्थ थी और पहिले ही दिन उन्होंने एक सख़्त भाषण देकर यह घोषित कर दिया था कि व्याकरण ही अंगरेज़ी की ही

नहीं , सभी भाषाओं की आत्मा है। फिर अंगरेज़ी में बहुत अच्छे दो-चार लड़कों की ओर देखकर उन्होंने साफ़-साफ़ कह दिया था कि फ़र्राटे से इंग्लिश बोलना बेमानी है, यदि व्याकरण का गहरा ज्ञान न हो। ऐसा निश्चय करके कि वे हमारी अंगरेज़ी सुधारेंगे पार्सिंग और एनालिसिस उन्होंने शुरू कर दिया था। व्याकरण में से एक लम्बा वाक्य वह हमारी क्लास के बोर्ड पर लिखते थे और फिर उसका विश्लेषण अलग-अलग लड़कों से प्रश्न पूछकर करवाते थे। कहना पड़ेगा कि लड़कों को अंगरेज़ी में निष्णात बनाने की उनकी नीयत पर शक नहीं किया जा सकता। मगर अंगरेज़ी में कमज़ोर पर व्याकरण घोटनेवाले लड़कों से सही-सही उत्तर पाने पर उन्होंने अचानक अपनी कृपा-दृष्टि मेरे ऊपर डाली।

संक्षेप में प्रश्न पूछे जाने पर मैं खड़ा हो गया, पर प्रश्न ही न समझ सका तो उत्तर क्या देता। भर्त्सना करते हुए तथाकथित 'अमीर बाप के बेटों' के पिता को लज्जित करने और बाप का पैसा खराब करने की याद दिलाकर प्रत्येक कर्तव्य-परायण शिक्षक की प्रकार बहुत आत्म-तुष्ट होने के कारण उनका क्रोध बढ़ गया और येनकेन मुझी से उत्तर निकलवाने के उत्साह में उन्होंने मुझे बेंच पर खड़ा कर दिया। समझ में नहीं आ रहा था कि मेरा अनन्त अज्ञान आज मुझे कहां ले जायेगा। जैसे-जैसे मैं परेशान हो रहा था, वैसे-वैसे उनका क्रोध और आनंद दोनों ही बढ़ रहे थे।

वह उस बुधवार को हमारी क्लास का आख़िरी पीरीयड था और मैं बजरंगबली से घंटा बजवा देने की प्रार्थना कर रहा था। एक साथ कहीं से एक ज़ोर की सीटी बजी। लड़के तो समझ गये, मगर गोरे मास्टर ने ऐसा दिखाया कि जैसे सामने के पेड़ पर कोई चिड़िया बोली।

"आज घर नहीं जा पाओगे, जवाब दिये बिना!" जब उन्होंने यह चेतावनी दी तो वही सीटी और भी तेज़ी से बजी। एक बार शुरू हुई तो लगभग पन्द्रह सेकंड तक बजती ही रही। गोरे मास्टर के रौब की पहली ईंट खिसकती मालूम पड़ी। लड़के एक-दूसरे की ओर देखकर मुस्कुराने लगे।

गोरे मास्टर ने बहुत ही गंभीरता से प्रश्न किया- "सीटी कौन बजा रहा है?" क्लास में एक गंभीर वातावरण तैयार हो गया। कुछ सेकंड ठहर कर उन्होंने फिर प्रश्न किया - " क्लास में सीटी कौन बजा रहा है?" उत्तर तो ऐसे प्रश्न का मिलना ही क्या था। इस बार बहुत ज़ोर की आवाज़ में उन्होंने कहा- "अगर मैंने उसे पकड़ लिया तो स्कूल से निकलवा दूँगा।"

अंतिम पंक्ति में सबसे गंभीर चेहरा लिये उन्होंने दुबले-पतले गोरे पारसी गोल

काली टोपी पहने फ़ीरोज़ को देखा, जो ढिठाई से उन्हें देख रहा था। उनकी नज़र मिलते ही वह खड़ा हो गया और बोला -" सर, सामने के पेड़ पर चिड़िया बोल रही है !" इतने में घण्टी बज गयी और सब लड़के "छुट्टी ऽऽ" चिल्लाते हुऐ बाहर निकल गये।

जैसाकि सब समझ गये थे सीटी फ़ीरोज़ ही बजा रहा था और कुछ अच्छे लड़कों ने जो अपनी अंगरेज़ी सुधारने को व्यग्र थे, चुगली खाने की भी धमकी दी। मगर फ़ीरोज़ व्याकरण के पीरीयड में अपनी बजायी सीटी को पाठ्य-क्रम का ही एक आवश्यक अंग मानने लगा था।

फ़ीरोज़ ने बाहर सड़क पर मुझे बताया कि डरूं नहीं। जब भी गोरे मास्टर पार्सिंग और एनालिसिस पर प्रश्न पूछ कर मुझे परेशान करेगा, सीटी बजेगी। दो बुधवार लगातार अपना शक अभिव्यक्त करने के बाद गोरे मास्टर ने यह स्पष्ट कर दिया कि सीटी बजते ही वह फ़ीरोज़ को निकाल देगा। चाहे उसने सीटी बजायी हो या नहीं। उस दिन स्कूल के बाद फ़ीरोज़ ने मेरे साथ एक एमर्जेन्सी मीटिंग की और तय हुआ की फ़ीरोज़ को निकाल देने के बाद भी सीटी बजती रहनी चाहिये और उसे पांच-पांच सेकंड के बाद बजाते रहने का ज़िम्मा मेरा है। इस तरह अगले बुधवार की प्रतीक्षा होने लगी।

अपने ऐलान के मुताबिक सीटी बजते ही फ़ीरोज़ को क्लास से निकालने के बाद जो राहत की साँस गोरे मास्टर ने ली, वह बहुत देर न रह सकी। अपनी किताबों को बस्ते में भरकर क्लास में से नीचे मुंह निकलने के बाद फ़ीरोज़ ने खिड़की में से दृष्टव्य विदा को हाथ हिलाया और क्लास फिर शुरू हो गयी।

पार्सिंग के नियमों को बड़े आग्रह से पढ़ाना गोरे मास्टर ने शुरू किया। दिन-भर के थके लड़के जमुहाइयां ले रहे थे कि सामने के पेड़ पर सचमुच एक बुलबुल आकर बोली।

सब लड़के जोर से हंस पड़े पर गोरे मास्टर गंभीर रहे और थोड़ी देर चुप रहकर उन्होंने दोबारा पढ़ाना शुरू ही किया था कि क्लास के अन्दर ही बहुत ज़ोर से सीटी बजी।

इस अवमानना को स्वीकार करना गोरे मास्टर के लिए असंभव हो गया। न मालूम उन्हें कैसे पता लग गया और उन्होंने मुझे निकाल दिया। जाते-जाते मैं बोला -"सर, अभी आपने बोलने वाली चिड़िया को देखा, तो भी आप मुझ पर शक कर रहे हैं। देखियेगा सर, सीटी तो बजती ही रहेगी।" बहुत ही तैश में गोरे मास्टर बोले - "तुम भी देख लेना। इस क्लास में तुम आते ही रहोगे। रिज़ल्ट लगने दो।"

मैंने ऐसी बात देखी या सुनी नहीं थी, पर गोरे मास्टर केवल गरजकर रह जानेवाले बादल नहीं थे। उन्होंने 100 में से 80 पाने वाले मुझको अंगरेज़ी में दो अंकों से फेल कर दिया। क्लास-टीचर होने के कारण भूगोल और गणित में भी फेल कर दिया, जिससे आगे प्रमोशन की कोई संभावना न रही। मुझे स्कूल छोड़ देना पड़ा। पिता का तबादला हो जाने की वजह से शहर भी छूट गया और छह साल तक मैं इन्दौर वापस न आ सका।

छह साल बाद लौटा तो ग्रेजुएट हो चुका था और पिता रिटायर हो चुके थे। नौकरी की तलाश जारी थी। खुशामद न करने, भ्रष्टाचार में सहयोग न देने और दशहरा-दिवाली पर 'डाली' लेकर मिनिस्टरों के यहां न जाने के कारण रियासत के सब लोग पिता से नाराज थे। सरकारी नौकरी मिलने की संभावना नहीं थी। बहुत मुश्किल से पोस्ट ऑफ़िस में नौकरी मिली। पोस्ट मास्टर ने मुझे मनी ऑर्डर की खिड़की पर बैठा दिया। अमीर समझे जानेवाले कुटुम्ब के जीवन से अलग मेरा जीवन शुरू हो गया। कारकुन का जीवन। भाई ने मिनिस्टर की एक लड़की से शादी की और घर में अच्छे ज़माने का जो कुछ था, उस पर उनका अधिकार हो गया। तथाकथित मिनिस्टर की लड़की के आने के बाद घर में जो परिवर्तन आ सकता है, उसकी कल्पना की जा सकती है। कुछ ऐसा भाव निरंतर घर में रहने लगा कि लड़की को कोई असुविधा न होने पावे। यद्यपि लड़की बिचारी सीधी-सादी थी, किन्तु भाई का भाव ऐसा था कि वह अपनी बीवी को सारे घर के आक्रमणों से बचा रहे हैं। हमारे खाने-पीने रहने-चलने के संस्कार टूटने लगे। अगर वह बाहर से आकर हाथ धोये बिना पानी में डाल देती, तो किसी की हिम्मत नहीं थी कि उसे टोके। अगर वह पिताजी पर चिल्लाती, तो सब लोग दूसरी तरफ देखते रहते। मां चार बजे उठकर नाश्ता और चाय बनाती और तीन चूल्हे धधकाती। तब कोयला एक रुपये मन था। दस बजे तक सबका खाना बन जाता। ऊपर की छत पर वह अपने और पति के लिए अलग खाना घी में बनाती। एक दिन भाई साहब ने ऊपरी हमदर्दी से कहा- "सोचा नहीं था कि इस घर में कोई पोस्ट आफ़िस में क्लार्क भी बनेगा। मैंने सोचा था कि अगर आपकी हरकतें ठीक होतीं, तो मैं अपनी साली से ही आपकी शादी करवा देता। मगर आप तो अपने बाप पर गये हैं जो सन्तोष को ही जीवन का सबसे बड़ा धन समझते हैं। लोगों से मेलजोल बढ़ाने और सम्पर्क स्थापित करने को जो खुशामद समझता है, उसका हश्र वही होना है जो पिताजी का हुआ। यह मकान इतना बड़ा नहीं होता तो क्या नया मकान आप किराये पर ले सकते हैं?" मैं चुपचाप सब सुनता रहा और मैंने संकल्प कर लिया की मां और पिताजी को लेकर मैं अलग रहूंगा, यद्यपि जिस बड़े मकान में थे हम, वह पिताजी ने ही लिया था।

भगवान की कृपा से सराफ़े में एक दो कमरों का फ्लॅट मिल गया और मैं वहां रहने चला गया गो माता-पिता नहीं आये। पिताजी की शर्त थी कि तुम शादी कर लो तब हम आयेंगे। असल बात यह है कि मां को बड़े भाई साहब व्यावहारिक और सफल लगते थे, जब कि मैं और पिताजी उनकी राय में दुनिया के अजूबे थे।

ख़ैर, नये मकान में नीचे हॉटेल था। खाने की तकलीफ न थी। सायकिल खरीद ली और मुझे सन्तोष था की जिस रास्ते को मैं ठीक समझता था, उसी पर चल रहा हूँ।

भाभी की सालगिरह पर मुझे अपने ही घर पर रात का खाने का निमंत्रण मिला। भाभी के अनुरूप भेंट लिये बिना उपाय न था। जीवन में पहिली बार मैं सराफ़ की सबसे बड़ी दुकान पर सोने की कोई वस्तु लेने पहुंचा। न जाना या कोई सस्ती भेंट लेकर जाना, दोनों ही बातें मेरे आत्मसन्मान के विरुद्ध थीं।

एक अंगूठी लेने में सफल रहा। कुल 125 की थी। पैसा देने जब काउंटर पर गया, तो फ़ीरोज़ ने मुझे और मैंने फ़ीरोज़ को पहचान लिया। काउंटर पर से निकल कर वह फ़ौरन बाहर आया और हमने एक दूसरे को बाँहों में बाँध लिया। किसी दूसरे आदमी को काउंटर पर बिठाकर फ़ीरोज़ मेरे साथ नीचे उतरा और हम लोगों ने एक हॉटेल में दही-बड़े और मूंग का हलवा खाया। कितनी यादें एक साथ लौट आयीं। वह सीटी वाला प्रसंग भी आना ही था। फ़ीरोज़ बोला- "मर गया बिचारा गोरे मास्तर ! हम लोगों को सुधार न सका– शायद इसी धक्के से ! मैं उससे मिलने गया था। तेरे बारे में बहुत परेशान था। मान रहा था कि उसने तेरे साथ अन्याय किया था। मैंने कहा- 'सर, गलती हम लोगों की थी, आप भी क्या करते? बुढ़ापे में जैसे आपको समझ में आया, हमें भी आ रहा है' अच्छा तू आजकल करता क्या है?"

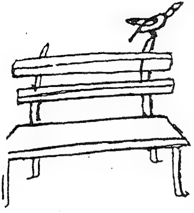
सुनकर कि मैं डाकघर में एक खिड़की पर बैठता हूं, वह बहुत गंभीर हो गया। थोड़ी देर चुप्पी रही। इतनी देर में बिल आ गया। मुझे चुकाने को उद्यत देखकर बोला- "साले, मुझे ही अपनी रईसी दिखा रहा है। मेरा मेहमान है तू! मर गया गोरे मास्तर, नहीं तो शिकायत करता तेरी !"

फिर हम लोग सड़क पर खड़े होकर एक घण्टे तक बात करते रहे। एकाएक बोला- "देख सुरेश, मैं और तू मिलकर एक नयी सराफ़ की दुकान खोलेंगे।"

"सराफ़ की ? क्यों इतनी बड़ी दुकान तो है तेरी ! और मेरे पास पैसा कहाँ है?"

"यह दुकान मेरे सुसरे ने खुलवायी है। तुझे तआज्जुब होगा सुनकर कि वह भी गोरे मास्तर का शिष्य है - पक्का ! जब तक मैं और तू मिलकर सीटी न बजायेंगे, गोरे मास्टर का भूत नहीं छोड़ेगा मुझे !"

आगे बीज मत बोना





जब वह छह बरस का था, तब उसने उस विशालकाय पक्षी को देखा। दोपहर बीत चुकी थी और धूप नरम पड़ गयी थी। वह अकेला भटकता-भटकता दूर निकल आया था। बहुत बड़े-बड़े आम के पेड़ों से वहां दिन में भी अंधेरा मालूम होता था। तभी जंगल कटे नही थे। सन 1933 की बात है। उस आम्रवन के अंधेरे में से बाहर उजाले में निकलते ही एक बहुत बड़ा फाटक था, जिस पर का लाल पेड़ बहुत पुराना हो जाने से मटमैला लगने लगा था। उस पर आते-जाते वह झूला करता था। निकलते ही ईसाइयों का कब्रिस्तान या 'सेमिट्री' थी। सौ-डेढ़ सौ साल से भी ज़्यादा पुरानी क़ब्रें वहाँ थीं। अंगरेज़ों का ज़माना था और क़ब्रों के ऊपर ऐसी-ऐसी मूर्तियां थीं कि जो विलायत से मंगायी गयी थीं। एक क़ब्र जो विशेष रूप से आकर्षक थी, संगमर्मर के एक आदमक़द फ़रिश्ते की थी जो पंख खोलकर जैसे उड़ने-ही वाला था। आँखें उसकी करुणा से भरी ज़मीन की तरफ़ थी। वह घण्टों उस क़ब्र के सामने खड़ा होकर सोचा करता था– क्या सचमुच में फ़रिश्ते होते हैं। घर में आर्ट की बहुत किताबें होने से फ़रिश्तों को उसने बचपन से ही देखा था। एक अंगरेज़ी कविता में शाम के वर्णन में आया था कि एक फ़रिश्ते का रुपहला आँसू साँझ के धुँधलके में धीरे से निःशब्द घास पर गिरा। अपराह्न की छलछल रोशनी में फ़रिश्ते की शकल बहुत सजीव लग रही थी। थोड़ी देर खोये-खोये उसने उसे देखा और आम के सूखे पत्तों से ढकी ज़मीन पर से होता तारकोल की लम्बी सड़क पर निकल आया।

पहले रामदयाल बाबू का घर आया, जिसमें दो बार परिवार के साथ जाकर आइसक्रीम खाना उसे याद आया। सड़क से दिखा कि सायकिलें एक के ऊपर एक दीवार के सहारे रखी हैं। उसने अन्दर के लोगों के क्रिया-कलाप का अनुमान किया और चौराहा पार करते ही वह वहाँ आ गया; जहां कॉलेज था और उसके पास ही नया होस्टेल था। होस्टेल इतना नया था कि चूने और पेन्ट की गन्ध उसमें से गयी नहीं थी।

कुएँ के सामने ही सड़क पार एक ढलान के ऊपर चरस चल रहा था। पहियों में पानी भरता था और खाली हो जाता था। दो बैल ढलान से ऊपर और नीचे आ जा रहे थे। उनके आने-जाने से ही चरस चल रहा था। वह बहुत देर तक देखता रहा। उस चमड़े के डोल के भरने और ख़ाली होने का कोई विशेष अर्थ वह न समझ सका। जैसे किसी परीदेश में वह खो जाता था। संसार एक बहुत सुन्दर, बहुत बड़ा

परीदेश था, जहाँ बहुत मज़ेदार बातें होती थीं और अनन्त मज़ेदार चीजें थीं। ऐसे ही एक सफ़ेद चौकोर फूल वह बाग में देख आया था, जो अभी तक के देखे सब फूलों से अधिक पसन्द उसे आये थे, गो उनमें सुगन्ध नहीं थी।

चरस को देखते-देखते वह सामने के कम्पाउंड में कब चला गया, उसे पता भी न चला। एक बहुत बड़े पीपल के पेड़ के नीचे चरस के आने-जाने में वह पूरी तरह खो गया। पास ही ढलान के पास ही कुछ नालियां बनी थीं, जो पानी को खेतों में ले जा रही थीं। स्वच्छ पारदर्शक पानी की आठ अंगुल गहरी धारा का सौंदर्य उस धूप में उसे ऐसा लगा, जैसा बड़े-बड़े मुनियों को गंगोत्री में भी न दिखा होगा। एक उजास में पानी ऐसे बह रहा था कि जैसे परीदेश की कोई बहुत पवित्र नदी बह रही है जैसे पिघला हुआ कांच और नीचे छोटे-छोटे कंकर साफ दिखते थे। उस धारा में छोटी-छोटी काली चिकनी चमकती मछलियाँ इधर- उधर घूम रही थीं। उसका मन जैसे पानी के ठंढ़ेपन और स्वच्छता का, सोयी हुई सिकता का और मछलियों की चटुलता का एक साथ अनुभव करने लगा। उसे लगा जैसे वह स्वयं चरस है, बैल है, पानी की धारा है, मछलियाँ है। उसके शरीर को देखकर अनुमान किया जा सकता था कि वह सशरीर किसी कल्पना-लोक में सक्रिय है।

दूर कहीं बुलबुल की दोहरी सीटी बजी। वह बुलबुल की आवाज़ को पहिचानता था। बुलबुल कहां बैठी है यह देखने को उसने ऊपर देखा। वह पीपल बहुत बड़ा था। शाखाओं का रंग ऐसा था कि जैसे वह वृक्ष नये अल्यूमिनयम का बना हो। शाखाएँ ऊपर तक फैल गयी थीं और उनके बीच में से आकाश को देखा जा सकता था। सबसे ऊपर गयी शाखा पर एक बहुत बड़ा पक्षी बहुत गंभीर मुद्रा में बैठा उसने देखा।

वह इतना बड़ा था कि पहले वह स्तम्भित-सा हो गया। वह पक्षी सफ़ेद दूधिया और फ़ाख्तई रंग को मिलाकर बना था। उसका मुँह, उसकी चोंच सब बहुत बड़े थे। आँखें भी। चोंच आगे से मुड़ी हुई थी। उसके ऊपर देखते ही उस विशाल पक्षी ने आंखें खोलकर उसे देखा। उन बहुत बड़े और तीखे नयनों में एक अपार करुणा थी। दो क्षण उसकी और उस पक्षी की आंखें चार हुईं और उसके बाद जैसे और समस्त दृश्य फीके और रसहीन हो गये। जैसे परी देश की रंग-बिरंगी दीपावलियाँ निष्प्रभ हो गयीं, जैसे अमन्द दीपों से दोनों ओर से सज्जित सड़क पर से एक विशाल पुरुष हाथ में मशाल लेकर निकल गया।

दो क्षण उसकी आँखों को एक नयी ज्योति देकर जैसे वह स्वयं उससे भी दोगुने आकार का पक्षी पंख खोलकर उठा - धीरे-धीरे अदृश्य नहीं हुआ। गगन की

नीलिमा में घुल गया। जैसे मिसरी की एक बहुत बड़ी शिला दूध से सफ़ेद बादलों में घुल गयी।

वह पेड़ और वह पक्षी जैसे उसके भीतर कहीं पहुँच गये और उसे सब कुछ जैसे विस्मृत हो गया। घर पहुंचने पर चतुर्दशी का चन्द्रमा ज़ीने की ऊपर वाली खिड़की के बीचोंबीच खड़ा जैसे उसका ही इन्तजार कर रहा था। चांदनी भी हमेशा से अधिक उज्ज्वल दिखायी पड़ रही थी। ज़ीने के ऊपर की खिड़की के लाल शीशे में से छन कर चांदनी लाल हो गयी थी। वह चौखूटे छोटी-सी संगमर्मर की डिबिया के से फूल ज़ीने पर पड़े थे। पड़े नहीं थे जैसे अपने को कुछ याद दिलाने को ही वह बाग़ से तोड़कर लाये उन फूलों को सबसे ऊपर की सीढ़ियों पर फैला गया था। उसने बड़े प्यार से वे फूल उठाये और उन्हें ले जाकर लाल चांदनी में रौशनदान पर रख दिया।

वह अनुभूति उसके जीवन का केन्द्र-सा बन गयी। जैसे वह एक ऐसा गोपन अनुभव था, जिसे किसी को बताना अपने आप को निर्वसन करना था। सुबह उठते ही उस विशालकाय पक्षी की करुण पर टकटकी बंधी आंखें उसके सामने आ जातीं। मगर वह बहुत देर तक टिक नहीं पाती थीं। जैसे रुई के से सफ़ेद बादल उसके चारों तरफ़ उड़ते थे और वह पक्षी उनमें घुल जाता था। फिर दिन-भर वह पहिया जिसके प्याले भरते और ख़ाली होते थे उसके सामने घूमता रहता था। चरस का चमड़े का डोल भरता और ख़ाली होता था। वह धीरे- धीरे ऐसा महसूस करने लगा कि उसके सामने ही कोई चीज़ भर रही है और खाली हो रही है। फिर उसे लगा कि जैसे भर ही रही है, इसलिए कि वह खाली हो। फिर उसे लगा कि भरने की क्रिया होने के लिए ख़ाली होना जरूरी है। न मालूम कब इसके विपरीत वह यह सोचने लगा कि ख़ाली होने पर भरना आवश्यक है।

शुरू-शुरू में लगभग 24 घण्टे उसे यही दृश्य दिखता था। फिर दिन में आठ-दस बार। क्रमशः यह दृश्य दिखना कम होता गया और जब तक वह इक्कीस वर्ष का हुआ, वह इस दृश्य को कभी-कभी ही देखने लगा। शुद्ध सौन्दर्य-बोध के अलावा उसके चित्र के आकारों मे अर्थ भरने लगा।

बैलों द्वारा ईख के खेत की सिंचाई हो रही थी। अंगरेज़ी में उसे पर्शियन व्हील कहते हैं, क्योंकि यह सींचने का तरीका शायद फ़ारस में शुरू हुआ और वहीं से यहां आया। ईख के फूल देखने को वह बड़ा उत्सुक रहता था, क्योंकि उसे याद न थे। जब एम. ए. में आ गया तो उसने मनोविज्ञान में एम. ए. करने का संकल्प किया। उसे जैसे जीवन को समझने के अलावा और किसी बात में दिलचस्पी ही नहीं थी। पढ़ने-लिखने में ही व्यस्त, कमरे में टेबिल-लैम्प के सामने बैठे -बैठे ही उसके

रात-दिन कटते थे। कभी-कभी खिड़की खोलने पर जब सुबह का आसमानी प्रकाश अन्दर आता तो उसे लगता कि वही विशाल पक्षी खुली हुई खिड़की पर आकर दो क्षण बैठा और उड़ गया।

एम. ए. में मनोविज्ञान की एक प्रयोगशाला भी थी। उस प्रयोगशाला में दो-दो विद्यार्थी मिलकर प्रयोग करते थे। समर के साथ एक सरकारी अफ़सर की लड़की थी उमा चौधरी। उसी ने एक बार उस रंग को समझाते हुए उसे बताया था कि ईख के फूलों का रंग लॅवंडर रंग का होता है। उमा चौधरी को यही रंग पसन्द था और इसी रंग की साड़ी पहनकर वह आती थी। चाहे इसकी छपाई बदल जाये पर रंग कभी नहीं बदलता था।

दोनों पास आते गये और कॉलेज के बाद यूनिवर्सिटी के बोटॅनिकल गार्डन में दोनों साथ-साथ घूमने लगे। एक दिन पीपल के एक पेड़ के नीचे बैठे-बैठे उसे अचानक वह विशाल पक्षी दिखा व उसके चौंक जाने पर उमा ने पूछा कि क्या हुआ। उमा वह पहली व्यक्ति थी, जिसको उसने बचपन का अपना वह अनुभव सुनाया।

उमा ने बहुत ध्यान से सब सुनकर कहा – "कितनी मज़ेदार बात है। यह घटना इन्दौर की है ना ? न्यू हॉस्टेल के सामने की ! रियली फनी ! मेरी बेस्ट फ्रेन्ड, सबसे अच्छी दोस्त रहती है वहां। उसका नाम है माला। और वह हँसी के सफ़ेद फूलों की माला ही की तरह है। वह फार्म उसके पिता मिस्टर वोरा का है। दो बहनें हैं - अंजु और माला। माला और मैंने उस फार्म पर महीनों साथ बिताये हैं और अभी भी गर्मी की छुट्टियों में या तो मैं उसके पास जाती हूँ और फिर या वही आ जाती है। इस बार वह आने वाली है। आप तो मिलियेगा ही। बहुत खुश होगी यह सुनकर कि उसका फार्म आपके जीवन में इतना महत्त्वपूर्ण है।"

समर को लगा कि जैसे वह एक ऐसे नाटक में काम कर रहा है, जिसकी कहानी या अन्त उसे मालूम नहीं है। और अब इस दृश्य के बाद उस नाटक में उमा भी शरीक हो गयी है।

इतना होकर भी समर कभी उमा के यहां नहीं गया था। जब नवरात्रि की पूजा में षष्ठि को देवी की प्रतिष्ठा हुई, तो वह पहिली बार उमा के यहां गया और उसे यह जानकर धक्का लगा कि उमा विवाहित है और उसके दो बच्चे भी हैं।

तो क्या उमा ने जान-बूझकर उससे यह बात छिपायी। बेशक, जान-बूझकर छिपायी। समर को बहुत निराशा हुई। एम. ए. करने के बाद फिर उमा और वह साथ न रह सकेंगे। खैर, यदि चौधरी साहब थोड़े उदार निकलें तो अपनी पत्नी को एक पवित्र निष्पाप मैत्री का अधिकार तो अवश्य देंगे। समर का प्रेम कुछ ऐसा ही

था। उसने यद्यपि उमा को मित्रता के प्रगाढ़तम भाव से चाहा था, पर उसे पत्नी के या प्रेयसि के रूप में कभी न देखा था। उमा यदि लड़का होती तो भी कोई अन्तर नहीं पड़ता। वह नहीं जानता था कि स्त्री और पुरुष के बीच ऐसी प्रगाढ़ मैत्री इतनी दुर्लभ है कि हिन्दुस्तान में केवल दो प्रतिशत व्यक्ति ही उस पर विश्वास करते हैं। बंगाल के अलावा कहीं भी स्त्री और पुरुष के प्रगाढ़ सम्बन्धों का अर्थ लैंगिक होना अनिवार्य है। ओस्वाल्ड श्वार्ज़ की प्रसिद्ध पुस्तक 'द सायकॉलजी ऑव सॅक्स ' में तो उस जर्मन मनोवैज्ञानिक ने यहां तक कहा है कि स्त्री और पुरुष का जो सम्बन्ध शारीरिक धरातल तक नहीं पहुंचता, वह अपूर्ण है। जो भी हो, समर का स्वभाव ही ऐसा था। कई बार वह सोचता था की वह कहीं कुछ मायने में कम तो नहीं है।

उमा की मित्र माला छुट्टियाँ शुरू होने के चार दिन पहिले ही आ गयी। यद्यपि भावना की उसमें कमी नहीं थी किन्तु बौद्धिकता प्रधान थी - एक तरह का गुण जो पुरुषों में अधिक पाया जाता है। अब गरुड़वाली अनुभूति को जाननेवाले तीन व्यक्ति हो गये। उमा बहुत भावुक थी और माला के आने के बाद उसका व्यवहार कुछ विचित्र-सा होने लगा था। एक बार सॅकिण्ड शो के टिकट लायी और ऐन मौक़े पर उसने घोषणा की कि वह शो में नहीं आ सकेगी।

समर को कभी शक न हुआ कि जैसे उमा उसे माला के पास लाने की कोशिश कर रही है। समर को संगीत बहुत पसन्द था और माला का स्वर असाधारण रूप से सुरीला था। समर में एक वृत्ति ऐसी थी कि जिसे उत्कट वैराग्य कहा जा सकता है और माला कबीरदास के ऐसे ही भजन ज़्यादा शौक से गाती थी।

मिस्टर चौधरी इन सब बातों में बहुत कम दिलचस्पी लेते थे। धीरे-धीरे ऐसा लगने लगा कि उन्हें परिवार में लगभग नहीं के बराबर दिलचस्पी है। और फिर एक दिन रिज रोड पर माला के साथ घूमते हुए समर को पता चला कि उनका चरित्र अच्छा नहीं है। समर ने कुछ बहुत बौद्धिक से अन्दाज़ में कहा- "चरित्र किसका अच्छा है और किसका नहीं, यह इस देश में कहना बहुत मुश्किल है। जो स्त्री अपने पति से घृणा करती है और पति भी उसका मुंह देखना नहीं चाहते - वह भी साल-दर-साल बच्चे पैदा करती रहती है। और प्रेम का एक नया अर्थ है विषयी होना, स्त्री की सेवा!"

"तो क्या स्त्री पुरुष की सेवा नहीं करती?" माला ने पूछा।

"ज़ैसे पिकनिक पर सब सब की मदद करते हैं, ऐसा परिवार में होना चाहिये न कि स्त्री के नखरों में उलझे रह कर हमेशा उसकी हुजूरी में खड़ा रहना प्रेम है

और न काजल आंज कर जूही का गजरा लगाकर पति के सामने मटकना ही प्रेम की निशानी है!''

''तो आप प्रेम को नहीं मानते?''

''मानता तो हूं आप अगर मुझे दक़ियानूस न समझें तो मैं कहूंगा कि पहला प्रेम ही प्रेम है, बाद में उन्हीं बातों को सोच-समझ कर दोहराना है। एक विस्मय, एक खोज, एक उपलब्धि का भाव क्या पहले प्रेम के बाद नहीं होता है, आपकी राय में?''

माला कुछ न बोली। मगर न जाने क्यों वह बहुत उदास हो गयी।

प्रेम पर बहस प्रायः रोज होते-होते छुट्टियां खतम होने को आयीं और माला के जाने का दिन आ पहुंचा।

तब एक दिन शाम के चार बजे लॉन पर टहलते हुए माला ने कहा –''समर का विश्वास पहले प्रेम पर है। बड़ा ऑर्थोडॉक्स आदमी है।''

उमा ने कहा -''देखो, समर हीनता-ग्रंथि से ग्रस्त है। जो उसमें आत्म-विश्वास पैदा करेगा, उसी से वह प्रेम करने लगेगा। मैंने ऐसा भोला लड़का आज तक नहीं देखा माला! इसका जीवन में क्या होगा, यही मैं सोचती रहती हूँ।''

माला सब समझ रही थी - ''काश, तुम शादी-शुदा न होतीं उमा! एक पराजित नारी उसे क्या विश्वास दे सकती है?''

''अपने को पराजित न कहो माला! पिता की मृत्यु और अंजु की शादी के बाद जो लड़की अकेली ईख का इतना बड़ा फार्म सफलता-पूर्वक सम्हाल सकती है और सालाना अस्सी हज़ार की आमदनी कर सकती है वह पराजित नहीं कही जा सकती।''

''तुम्हें सुनकर आश्चर्य होगा कि इम्तिहान खतम होने के बाद वह फ़ार्म पर मेरे साथ आकर रहने को तैयार हो गया है।'' आगे उसने कहा - ''ओह माला! मैं तुम्हारा उपकार जीवन-भर नहीं भूलूंगी। मैं इस काँच के दिलवाले लड़के के लिए बहुत चिन्तित रहती हूँ। उमा, मैं पूरी कोशिश करूँगी पर सफलता की आशा कम है। उसका मिज़ाज बहुत ज़िद्दी है।''

समर एम. ए. प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण हुआ। केवल उमा के आग्रह पर और माला से किये गये वायदे के कारण वह माला के फ़ार्म पर अनमना चला गया। सब कुछ बदल गया था। अब वहाँ पम्प था जहां उसने चरस देखा था। अब वहां सीमेन्ट का मकान था जहां ईंटों का दोमंज़िला घर उसने देखा था। सुबह छज्जे पर बैठ कर यह लोग हवा में झूमते ईख के फूलों को देखते। धक-धक -धक -धक पम्प

चलता रहता अनवरत जैसे जीवन - कोशिश, कोशिश, कोशिश। कोशिश कोशिश कोशिश। और माला उसकी माँ की जगह लेती गयी क्योंकि और कुछ हो पाना समर के जीवन में संभव नहीं था। शादी तय होने के बाद भी समर को ऐसा नहीं लगा कि उसकी शादी होगी। विडम्बना यह कि जैसी प्रेमिकाएं समर ने जीवन में देखी थीं या किताबों में पढ़ी थीं माला वैसी न थीं। कहां उसके प्रेमिका होने में कमी थी, यह कहना मुश्किल था।

पर अधिकतर या तो वह माँ थी और या बेटी। ठीक शादी के दिन उमा हवाई जहाज़ से अपनी बड़ी लड़की को लेकर आनेवाली थी, पर एक दिन पहिले उसका तार आया कि वह आ न सकेगी - चौधरी साहब की तबियत ठीक नहीं।

शादीवाले दिन माला सुबह से उसे चिट्ठी लिखने को बेचैन थी, यद्यपि समर चाहता था कि वह चिट्ठी न लिखे और शादी के बाद यही लोग वहां जाकर चकित कर दें। मगर माला चिट्ठी लिखे बिना बहुत बेचैन थी।

शादी रजिस्ट्रेशन से हुई और आध घंटे में माला और समर पति-पत्नी हो गये। सामने बगीचे से फूल तोड़ने माला नीचे उतरी और समर पलंग पर लेटे - लेटे तकियों से खेलने लगा। एक तकिये में से माला की लिफ़ाफे में रखी चिट्ठी गिरी। लिफाफा बन्द नहीं किया गया था। जल्दी-जल्दी लिखा गया था -

प्रिय उमा,

तुम्हारे यह कहने पर कि यदि कभी जीवन में तुमने किसी से प्यार किया है तो समर से और अगर कोई तुम्हारी मित्र है तो मैं, मैं आज समर की पत्नी होने जा रही हूँ और उसे तुम्हारी अमानत समझ कर बहुत ही हिफ़ाजत से रखूंगी। तुम्हारा न आना ठीक ही हुआ। वह तुम्हारे पास आना चाहता है पर मैं उसे रोकूंगी। मैं अभी उसके साथ तुम्हारे पास आने को खतरे से खाली नहीं समझती। जल्दी में।

तुम्हारी माला।

पत्र उसी लिफ़ाफे में रखकर उसने वापस तकिये में रख दिया। माला फूल लेकर वापस आयी और उसने गुलाब की पंखड़ियां निकाल कर समर के सिर पर डालीं। समर की गोद में लाल गुलाब की बहुत-सी पंखड़ियां जमा हो गयीं।

नीचे से किसी स्त्री-कंठ की ज़ोर से पुकारने की आवाज़ आयी- राधे ! राधे !!

समर ने माला की तरफ देखा। माला ने हंसकर कहा- "एक वैरागन है गौरदासी। उसे पागल समझते हैं सब मगर गज़ब के गीत गाती है। बाउलों के एक झुंड के साथ आयी थी और फिर यहीं रह गयी। पीपल के उस पेड़ के नीचे कई

दिन से आकर रहती है, जिस पर तुमने उस गरुड़ पक्षी को देखा था। मालूम नहीं किस दुनिया में रहती है ! आज उसका आना अच्छा शकुन है।'' समर ने छज्जे पर से आकर देखा- बिना किनारी की एक सफेद साड़ी पहिने मुंडित सिर वाली दुबली-पतली औरत पीपल के पेड़ के नीचे बैठी आकाश की ओर देख रही है।

माला ने कहा - ''सारा शहर इसके पाँव छूता है। नाम किसी को नहीं मालूम इसका ! पुलिस कमिश्नर तक इसके पांव सबके सामने छूता है।''

समर उसी की ओर देख रहा था। उसे देखकर बहुत ज़ोर से हंसी वह - ''आ गये ! बहुत देर लगायी। भोग से भागोगे ? नहीं भाग सकते। ईख खाने में काँटे लगे ना ? डर गये ? रस निकालो उसका ! फिर गुड़ बनेगा, शक्कर बनेगी, मिसरी बनेगी। उसको गुड़- शक्कर नहीं पसंद। मिसरी बनने दो तब आयेगा। मक्खन - मिसरी ! समझे ना ! मक्खन- मिसरी ! फिर वह गाने लगी –

भरने को ही चरस खाली होता है
खाली होकर फिर भरता है।
देखो, शाम हो गयी,
देखो पानी को पकड़ने की कोशिश मत करो...

समर भागता हुआ नीचे आया और उसके पावं छूने पहुंचा। ''छूना मत ! छूना मत ! भागकर यहाँ मत आओ ! सामना करो !''

''सामना ? किसका सामना ?'' ''भोग का सामना ! खेत कटेगा, फिर उगेगा। जब तक बीज है तब तक भोग है। भोगो ! भोगो ! भोगो ! ''

वह स्त्री नाचने लगी। ''तुम्हें नाचना नहीं आता ! नाचने में जब एक पैर जमीन पर होगा, तभी तो दूसरा हवा में ऊपर उठेगा ! नहीं तो गिर पड़ोगे ! नाचो ! नाचो !!'' कह कर वह फिर ज़ोर- ज़ोर से नाचने लगी। ''गरुड़ के साथ ऊंचे जाना चाहते हो ? ऊपर क्या है पगले ! सिर्फ़ बादल !''

समर के बहुत पास आकर उसने कहा- ''मोर बनो ! यहीं नाचो ! मेघों को देखकर नाचो ! यह भूमि ही ले जाायेगी वहाँ। धरती पर नाचो ! बादलों में खोकर खो जाओगे। खोने के बदले पाओ पगले ! पाओ ! गाओ मेरे साथ –

इस बार खेत नहीं लगाऊंगी।
ईख में बहुत काँटे हैं।
यह धरती नाचने के लिए है,
अब खेती नहीं करूँगी,
गरुड़ अब मत आना

मोर को बुलाने मेघ घिर आये हैं।

" तो गरुड़ ! गरुड़ ?"

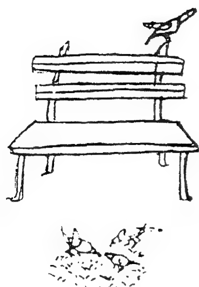
"साँप खाने आया था। तुम्हारे बगीचे का साँप खा गया। बस अब नाचो! धरती पर नाचो ! जो खेत बोया है उसे तो काटो। आगे बीज मत बोना। "

इतने में माला भी आ गयी। प्रणाम किया।

"मोरनी केवल मोर के आँसू पी सकती है। नाचने को पंख उसे नहीं मिले।"

सामान उठा लिया और वह जाने को तैयार हो गयी। वह वैरागन बोली- "सुखी करने चली है दूसरों को ! सत्यानाश कर देगा तेरा अहंकार ओ अभागन !"

समय



अख़बार लेने गयी थी उमा, मगर सुबह के ग्यारह बजे बोरी बन्दर स्टेशन पर सामने से नीची आंखें किये चन्द्रशेखर को वह पन्द्रह साल बीत जाने पर भी एकदम पहचान गयी। उसके व्यक्तित्व में बड़े भाईवाला स्नेह - मिश्रित अधिकार तो सदा से था, अब एक तरह का आत्म-सन्तोष भी, जो बीस साल तक उच्च पदाधिकारी रहने के बाद आ जाना स्वाभाविक था। इतने मिले-जुले थे कि पतले होठों पर फैली हँसी जैसे उस सबकी ही अभिव्यक्ति थी। एक तरह से उसके मुख को देखने से लगता था कि जैसे यह आदमी बातचीत का बहुत शौक़ीन है।

"शेखर !" उमा ने आवाज़ दी। उसने एकाएक थमकर देखा कि जैसे जानना चाहता हो कि आवाज़ कहां से आयी ! फिर अख़बार के स्टॉल पर हाथ में अखबार लिये खड़ी उमा को देखकर वह जैसे एक अभूतपूर्व आनन्द से छलछला उठा।

फिर चाय और बातें ही बातें और स्टेशन के रेस्त्रां से बाहर आकर उमा को एहसास हुआ कि बारह बजे दफ़्तर में जाने का कोई मतलब नहीं। सो वह छुट्टी मनाने में सुखी हुई। शिवाजी पार्क में ठहरा था शेखर अपने दफ़्तर के गेस्ट हाउस में।

दोनों ने साथ खाया - कमरे में खाना मंगाकर ! दोनों ने निश्चय किया कि वहीं कॅडल रोड पर कॉलेज ऑफ केटरिंग में खाया जाये, जहां दोनों सन 1976 और, 77 में साथ-साथ पढ़ते थे और घंटों समन्दर पर जाकर बैठा करते थे। उमा धीमे स्वर में गाती रहती थी। दूर क्षितिज पर कहीं उमा की आंखें टिकी रहती थीं, जैसे उसे किसी जहाज़ के आने का इन्तज़ार है और शेखर उसकी आंखों को ऐसे देखता था कि जैसे भवसागर से पार जाने को भगवान ने उसे दो नावें उपहार में दी हैं।

दो साल एक-दूसरे को जानने के बाद दो घंटों की तरह निकल गये। चन्द्रशेखर ने सोशल गैदरिंग के पहले की पिकनिक में एक गाना गाया था - "तुमसे मिलकर साल छोटे हो गये। काल के सागर में हम-तुम खो गये !" शेखर गाने का शौक़ीन था और केटरिंग कॉलेज का हरेक विद्यार्थी हँसकर कहता था - "शेखर कैसा गाता है यह तो कोई उमा से पूछे !"

उनकी दोस्ती ऐसी थी कि बड़े विश्वास से उमा अपनी गोपन से गोपन बात शेखर को बता देती थी कि, जैसे क़ोई छोटी लड़की बाहर से भागकर घर आये और

बड़े भाई को सलाह के लिए बुलाये और शेखर ऐसे बात करता था कि जैसे उमा कोई देवी है, जिसका हुक्म मानना उसके जीवन का मधुरतम दायित्व है।

शेखर तामिलनाडु सरकार के टूरिस्ट डिपार्टमेन्ट से हॉटेल व्यवस्था की ट्रेनिंग लेने आया था और उमा अपने विधवा होने के बाद अपने पति की वर्ली पर स्थित बेकरी को आधुनिक से आधुनिक बनाना चाहती थी। मिस तलवार मज़ाक में उसे 'मेरी विडो' याने खुशमिज़ाज विधवा कहती थी। केटरिंग कॉलेज की प्रायः हरेक पंजाबी लड़की शेखर से बहुत घनिष्ट थी और कभी-कभी हलके क्षणों में शेखर से कहती थी कि "भई, हम उमादेवी की बराबरी तो कैसे कर सकते हैं!"

कोर्स समाप्त होने के बाद उनमें से दो-तीन पंजाबी लड़कियों को शेखर ने दक्षिण के बड़े-बड़े हॉटलों में लगाया। तामिलनाडु के प्रायः सभी मिनिस्टर शेखर से बहुत घनिष्ट थे और उनकी पत्नियों से बात करते हुए वह उन्हें 'पेरीअक्का' या बड़ी बहन कहता था।

छुट्टियों में उमा एक बार मद्रास गयी थी और शेखर के साथ भी ठहरी थी। शेखर की पत्नी को उसका आना पसन्द न आया था और वह बुखार का बहाना करके बिस्तर पर पड़ गयी थी। नाश्ते से लगाकर रात तक का खाना खुद उमा को बनाना पड़ा था और शेखर स्वाद ले-लेकर खाते हुए कहता था – "चार दिन की चाँदनी !" गो वह कहता बहुत धीरे से था पर शेखर की पत्नी मैत्रेयी ने सुन ही लिया था। सातवें दिन चिल्लाकर कहा भी था – "अमावस्या सुन रही है!" बाहर बरामदे में शेखर ने उमा से कहा था – "पुरानी बात है। मेरा जीवन ही नष्ट हो गया। काश, इसकी जगह तुम होतीं !"

दस दिन बाद जब उमा वापस बम्बई आ रही थी, तो शेखर की पत्नी के पाँव छूने गयी थी। ज़ोर से पाँव खींचते हुए उसने कहा था- "नाटक मत करो ! अब तो तुम्हें यहीं किसी हॉटेल में बड़ा पद मिलेगा और मिनिस्टर के घर की हर बड़ी दावत का इन्तज़ाम तुम ही करोगी!"

उमा ने हँस कर कहा था - "भाभी, मुझे मालूम होता कि मेरा यहां आना तुम्हें इतना बुरा लगेगा तो मैं आती ही नहीं!"

हाथ मटकाकर शेखर की पत्नी बोली थी - "ननदजी, तुम्हारी जैसी ननदें तो यहां आती ही रहती हैं, मगर अभी तक पंजाब की थीं। बम्बई की ननद तो सबसे तेज़ धारवाली निकली !"

शेखर का छह बरस का लड़का प्रभाग अपनी मां की साड़ी पकड़े डरा-सा खड़ा देखता रहता था। उसके भोले चेहरे पर उभर आये डर की वजह से उमा चुप

हो जाती थी और उसे तआज्जुब होता था कि प्रभाग कितना अधिक शेखर का सा दिखता है।

तो शेखर ने बताया कि प्रभाग अब इक्कीस बरस का है और उसे ताजमहल हॉटेल में काम मिल गया है। हॉटेल में रहने का इन्तज़ाम नहीं है। शेखर परेशान है और उसे कहीं ठहराने के लिए ही वह बम्बई आया है। प्रभाग भी उसके साथ है। अभी ताजमहल हॉटेल गया है। ज़ल्दी ही आता होगा।

"मैं ऑफिस के क्वार्टर में माहीम पर रहती हूँ। फ़िलहाल वह चाहे तो मेरे संग रह सकता है।"

विभोर होकर शेखर बोला - "मेरे जीवन में दुख ही दुख है उमा ! तुम न आतीं तो जो थोड़ा-सा सुख है वह भी न रहता ।"

(2)

प्रभाग चतुर लड़का था। चरण छूकर मीठी बात करके वह सबको प्रसन्न कर लेता था। रहता था उमा के क्वार्टर में और खाता था उमा के साथ। अपने पैसों के खर्चने का मौक़ा उसे सिर्फ़ ऑफिस में या हॉटेल में मिलता था। खाना-पीना तो हॉटेल में भी मुफ्त था। रात को ड्यूटी से लेट आने पर उमा उठकर उसे खाना गरम करके देती थी। लगभग बच्चों की तरह दिन-भर के सब हाल वह खाना खाते-खाते उमा को सुनाता था और उमा रस लेकर सुनती थी। यहां तक कि वह ताजमहल हॉटेल का मॅनेजर होने का स्वप्न देखने लगा। उसके एक मित्र ने जो लगभग रोज़ उससे मिलने उमा के क्वार्टर पर आता था, उसे बताया कि पुखराज की अंगूठी पहिनने से उसका भाग्योदय निश्चित था, क्योंकि उसका बृहस्पति कमज़ोर है। तो उमा ने अपनी पुखराज की अंगूठी भी उसे दे दी। फिर एक दिन रात को बारह बजे खाना खाकर बिस्तर पर लेटा और वह सोच में डूब गया । प्रायः प्रतिदिन उमा और प्रभाग गप्पें लगाये बिना सोते न थे और कई बार तो हंसते-हंसाते उमा कब नींद में खो जाती थी, उसे मालूम भी न पड़ता था । उस दिन उसे किसी चिंता में डूबा देख उमा ने आग्रह से पूछा और क़समें दिलायीं । धीरे से प्रभाग बोला - "हॉटेल में मेरे अलावा सबके गले में सोने की चेन है ! " उमा ने हंसकर कहा - "बस इतनी-सी बात ! चेन तो एक-डेढ़ तोले में बन सकती है।" प्रभाग उसकी आंखों में एकदम आंखें-सी डालकर बोला - "मैं तो अपना सब पैसा फिक्स्ड डिपॉजिट में डाल चुका हूं !" और उसकी आंखों में आंसू छलछला आये ।

उमा ने हँसकर कहा- "मेरे फिक्स्ड डिपॉज़िट तो तुम्हीं हो प्रभाग ! मैं पन्द्रह दिन में एक चेन मौहय्या कर दूंगी। अब एक गाना सुनाओ । वहीवाला जो तुमने

अभी-अभी सीखा है।'' प्रभाग रात को बारह बजे धीमी आवाज में गाने लगा –

''किस बाग़ की चिड़िया किस जंगल में आ निकली।

इस देस में यह गाना कोई नहीं समझेगा।''

उमा ने हँस कर कहा- ''समझा कि नहीं इस देस में ? अब यह गाना गाना तुम छोड़ दो प्रभाग।''

दिन उड़ चले। इतना सुख ! क्या मनुष्य को अतिशय सुख में कभी यह ध्यान आता है कि यह सुख हमेशा न रहेगा। लगता था जैसे उस घोंसले की दो चिड़ियें सुबह उड़ जाती थीं और फिर रैन-बसेरा करने रात को लौट आती थीं।

शनिवार की रात को दोनों मिल कर गाना गा रहे थे। खिड़की खुली थी। उमा ने बाहर देखकर कहा –

ट्विन्कल ट्विन्कल लिट्ल स्टार,

हाउ आय वन्डर व्हॉट यू आर।

और हँसने लगी। प्रभाग बहुत गंभीर था। उमा ने बहुत आग्रह से कहा - ''बोर कर देते हो। घड़ी - घड़ी तो तुम्हारे मूड बदलते हैं।''

''जीजी, मुझे तुमसे एक बात कहनी है।''

''कहो कहो, इसमें इज़ाज़त लेने की क्या ज़रूरत है ! तुम इतना डर-डर कर क्यों बात कर रहे हो।''

इक्कीस बरस का वह लड़का अपने से कहीं बड़ी और अनुभवी औरत को ऐसे देखता रहा, जैसे वह औरत एक सोलह बरस की लड़की है और वह एक बहुत अनुभवी पुरुष है।

''ऐसे क्या देख रहे हो ?'' उमा ने पूछा। प्रभाग देखता ही रहा। ''ऐसे क्या देख रहे हो ?'' प्रभाग देखता ही रहा।

उमा ने हेड-मिस्ट्रेस की सी आवाज़ में कहा - ''डोन्ट बी सिली। क्या बात-बात में तुम अपना मूड बदलते रहते हो। कल मैं अपने पिता के यहाँ जा रही हूँ। सन्डे बिताने। रोटी बनानेवाली आकर रोटी बना देगी। आलू की भाजी मैं बनाकर रख जाऊंगी - इतवार को सवेरे तो तुम काम पर जाओगे। शाम को लौटकर वह भाजी मिलेगी। मिसेज़ व्यवहारकर के यहां फ्रिज में रखवा जाऊंगी। तुम ले लेना।''

उदासीन आवाज़ में प्रभाग ने कहा - ''मुझे नहीं चाहिये भाजी-वाजी ! जीवन-भर तो मुझे भाजी-वाजी का इन्तज़ाम करना ही है, फिर दो दिन की क्या बात ?''

उमा ने समझाते हुए कहा - ''जीवन-भर तो मैं तुम्हारे साथ न रहूंगी !'' और बत्ती बुझा दी।

सोमवार को दो बजे जब उमा अपनी मां के संग खाना खाने बैठी थी, तब घंटी बजी। दरवाज़ा उमा की बहन दामिनी ने खोला। रेशमी कमीज़ और ऊनी पतलून पहने प्रभाग खिसियाना-सा अन्दर आया। दामिनी की भौंवों में तो पहले ही बल पड़ गये थे। उमा की मां ने प्रभाग के नमस्ते का जवाब तो दिया पर बिना उसकी तरफ़ देखे। खाना किसी ने खाना शुरू नहीं किया था, गो महाराजन ने परोस दिया था। परोसी हुई थाली पर से उमा उठ खड़ी हुई और प्रभाग को लेकर ड्राइंगरूम में आ गयी। दामिनी ने उमा की मां की तरफ देखा और उमा की मां जल्दी-जल्दी खाने लगी।

जब भी उमा अपनी मां के यहां रहने एकाध दिन को आती थी, यही होता था। दोपहर होते न होते प्रभाग भी पहुंच जाता था। सारा परिवार हर बार यह स्पष्ट कर देता था कि उसका वहां आना उन्हें बिलकुल पसन्द नहीं है। पर प्रभाग जब उमा की मां के पांव छूता था , तब दामिनी मुस्कुराने लगती थी। उमा का अपनी सुसराल से मनमुटाव था जिसका कारण यह था कि उमा बावजूद अपने वैधव्य के बड़ा-सा बंगाली टीका भी लगाती थी और बाएं हाथ में एक प्लास्टिक का सफेद कंगन भी पहनती थी। सीधे हाथ में तो घड़ी होती थी, जो उसके पति की थी और जो उसकी पतली गोरी कलाई के लिए बहुत बड़ी लगती थी। उमा गंभीर होकर प्रभाग को ड्रॉइंगरूम में ले आयी और बहुत गंभीर स्वर में उसने पूछा - "क्या आज छुट्टी है ?"

"नहीं ! " प्रभाग बोला।

"तो फिर ? "

"मैंने ली है।"

"क्यों ?"

"मुझे पास बनवाना है ट्रेन का !"

"हमेशा तो तुम पास बनवाने के लिए छुट्टी नहीं लेते। ऐसा करोगे तो मुझे शेखर को खत में सब लिखना पड़ेगा।"

प्रभाग ने उमा को ऐसे देखा कि उमा को बम्बई छोड़ते हुए शेखर का चेहरा हूबहू याद आ गया। कई बार ऐसा होता था। प्रभाग की आंखों में एकदम शेखर का भाव आ जाता था। उमा को लगता था कि जैसे शेखर ही उसे देख रहा है।

जानी-पहचानी स्मृतियां मनुष्य के साथ कितना धोखा करती हैं। थोड़ी देर खामोशी रही। फिर उमा ने थोड़ी कठोर आवाज़ में कहा -"खाना खाया ?"

प्रभाग ने सिर हिलाकर कहा – "नहीं।" दामिनी जो सबसे आखिर में खाने

बैठी थी रसोई में से चिल्लायी – ''उमा तुम्हारी थाली भिनक रही है। मां तो खाना खाकर उठ भी गयी।''

खिसियानी-सी होकर उमा ने कहा- ''प्रभाग भी यहां खायेगा।'' फिर प्रभाग से ऊंची आवाज़ में कहा - ''चौके में पॅन्ट पहिनकर कैसे बैठोगे ?''

दामिनी ने जैसे समस्या को हल कहते हुए कहा - ''उमा, काका की नयी धोती निकालकर दे दे कबर्ड में से !'' उमा की मां का मुंह गंभीर होता गया और दामिनी चुस्ती से दूसरी थाली लगाकर जल्दी-जल्दी खाना परोसने लगी। प्रभाग ने धीरे-धीरे खिसियाना-सा हो धोती पहनी और उमा के पास पटरा लेकर खाने बैठ गया।

उमा ने उससे कुछ कहने के इरादे से उसकी तरफ़ देखा तो रोज़ की तरह आज भी उसको यह गहरा एहसास हुआ कि कभी-कभी प्रभाग एकदम अपने पिता का -सा लगता था। केटरिंग कॉलेज की जिस पिकनिक में शेखर और उमा दोनों गये थे और जिसमें शेखर ने उमा के पास बैठकर खाया था, वही दिन आंखों के सामने आता रहा।

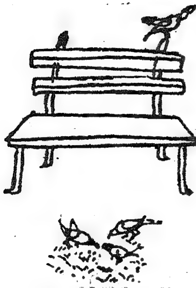
(3)

दो साल बाद उसी आय. ए. एस. ऑफिसर से उमा की शादी हो गयी, जो उसके महकमे का सर्वोच्च अधिकारी था। उमा का परिवार तो जैसें स्वर्ग में पहुंच गया। फिर भी उमा की मां को लगता था कि उमा का पति हंसने और कभी - कभी लाड़ करने का अभिनय करने के बावजूद कुछ बन्द-बन्द सा है। उमा को यह अपनी मां का वहम लगता था।

दामिनी का कहना था की शादी के चार साल के पहिले से उसके यहां काम करनेवाली जवान रसोईदारिन ज़रा ज़्यादा ही प्रगाढ़ रूप में 'साब' से बात करती है। प्रभाग के पत्र उमा के पति के पास आते रहते थे, जिनमें उमा के चरित्र पर आरोप लगाये जाते थे। दफ्तर में भी लोग अब साहब से कुछ छिटके- छिटके रहने लगे।

पर मज़ेदार बात यह कि जब शेखर दोबारा बम्बई आया, तो उमा के पति ने उसे चाय पर आग्रहपूर्वक बुलाया, गो एक ज़रूरी मीटिंग के कारण वह स्वयं उपस्थित न रह सका।

तुम मेरा प्रेम संभाल नहीं पायीं



प्रिय सुगन्धा,

अपनी आश्रम-वासिनी बहन से मिलने मैं जब कनखल पहुंचा, तो मुझे स्वप्न में भी यह गुमान नहीं था कि अपने पति के संग तुम वहां मिल जाओगी । बहुत अच्छे हैं तुम्हारे पति। ऐसा पति पाना सचमुच बहुत पुण्य होने से ही संभव है। मुझे उनसे कितनी ईर्ष्या हो रही थी कि बताया नहीं जा सकता। किन्तु मैं उनसे स्वाभाविक रूप से बहुत घुलमिल कर इसलिए बात नहीं कर सका कि जितना मैं तुम्हें पचास वर्ष पूर्व चाहता था, उतना ही अब भी चाहता हूँ। यह उन्हें मालूम होने में निश्चित ही संकट है। निश्चित ही उनके लिए सुखी या उल्लसित होने की बात नहीं है और मैं आध्यात्मिक रूप से इसे उनके प्रति अपना कर्तव्य समझता हूं कि तुमसे हृदय से या भावपूर्ण होकर कोई बात न करूं। तुम शायद इसे मेरी मूर्खता ही समझो, मगर तुम या और कोई स्त्री मुझे कभी समझदार समझेगी, इसकी कम ही आशा मुझे है। डी. एच. लॉरेन्स ने अपनी भावी पत्नी को, जो एक विवाहिता स्त्री थी, उसके पति के घर में चूमने से मना कर दिया था क्योंकि वह चूमने और आलिंगन के अलावा प्रेम प्रकट करने का कोई और साधन नहीं जानता था। पिछले सौ वर्षों से पाश्चात्य समाज में शरीर की महत्ता बढ़ती ही रही है। साहित्य में भी पन्द्रहवीं शताब्दी से ही शरीर को भोग्य और भोक्ता बनाकर ही देखा गया। तुम पचास साल पहले भी कहती थीं कि लेक्चर सुना- सुनाकर मैं बोर कर देता हूँ तो फिर समझो वही बोरियत वापस आ गयी ।

अपने जीवन में मुझसे पूर्व और पश्चात के प्रेमियों को सोचकर तुम्हें मैं कायर और निरीह लगता होऊंगा। संभव है तुम्हें यह भी लगे कि मुझमें पुरुषत्व की कमी है। मगर जिन लोगों को उसका अनुभव हुआ वह निस्संकोच गवाही दे सकेंगे कि मुझमें पुरुषत्व या चाहो तो पुंसत्व औसत आदमी से अधिक ही है। तुम्हें लगता होगा कि इतना प्रगाढ़ और लगभग अदम्य प्रेम होकर भी मैं तुमसे इतना दूर-दूर कैसे रह सका ? और उस बहुत छोटी उम्र में भी (और मानसिक रूप से तो मैं पैदा ही प्रौढ़ हुआ था।) बावजूद तुम्हारे स्पष्ट आकर्षण के मेरा व्यवहार पुरुषोचित नहीं रहा ।

मैं भी स्वीकार करने में बहुत उत्साहित हूँ कि तुम्हारे असाधारण रूप से सुन्दर शरीर व चेहरे के (और तुम्हारी आँखें तो केवल तुम्हारी ही आंखों की तरह है।)

सुधा - सागर में मेरे नेत्र अवगाहन करते रहे और जैसे-जैसे तुम्हारा अतिशय मोहक लावण्य बढ़ता रहा, वैसे-वैसे मैं तुम्हें भोग्य समझने में असफल होता रहा।

मैं संसार में मनुष्य - जीवन का सर्वोपरि लक्ष्य प्रेम को ही समझता हूँ। विश्व-प्रेम नहीं बल्कि स्त्री और पुरुष का प्रेम।

मुक्ति या भुक्ति दोनों की सिद्धि स्त्री के लिए पुरुष और पुरुष के लिए स्त्री के बिना नहीं हो सकती। फिर भी जिस स्त्री को जितना अधिक प्रेम करूंगा, उसे भोग्य रूप में स्वीकार करने में उतनी ही कठिनाई पड़ेगी। इसका कारण यह नहीं है कि शरीर नश्वर या सौन्दर्य नश्वर है या बुढ़ापा आकर सौन्दर्य नष्ट कर देता है। प्रेम मेरे अर्थों में हो तो 70 बरस की वह औरत, जिसे मैंने जवानी में प्यार किया था, संसार की सबसे सुन्दर स्त्री रहेगी - चाहे वह बूढ़ी हो जाये या मर जाये। यह तथाकथित बुद्धिवाद के हिसाब से रूमानी प्रेम हो सकता है, पर इन सब बातों का निर्णय क्या हमारे लिए हमेशा दूसरे ही करते रहेंगे कि क्या रूमानी है और क्या जिस्मानी है या शरीर आत्मा की ही अभिव्यक्ति है या प्रेम मनुष्य का सबसे नैसर्गिक आवेश है। हम क्या स्वयं खुले दिल से सोचने के साहस से सर्वथा वंचित रहेंगे?

शरीर की सीमाओं की विडम्बना से शुरू करो। वही शरीर जो भोग्य वस्तु के रूप में संसार का सबसे मोहक शरीर लगता है, निश्चित रूप से स्त्री की बेवफ़ाई के खुलते ही घृणा का लक्ष्य बन जाता है। जो सचमुच सुन्दर वस्तु है, वह हमेशा सुन्दर ही दिखनी चाहिये। बेवफ़ाई विदित होने के दो ही घण्टे में आकर्षण घटने लगता है। बक़ौल महाकवि बच्चन के -

कितनी जल्दी रंग बदलती,
है अपनी चंचल हाला।
कितने जल्दी घिसने लगता
हाथों में आकर प्याला
कितनी जल्दी साक़ी का
आकर्षण घटने लगता है।
अरे! दूसरे ही दिन पहले
सी न गई रह मधुशाला।

ऐसा भी देखा गया है कि बावजूद अनेक उपेक्षाओं के दुतकारों के, और अवज्ञा के दीवाना आशिक़ मैदान से नहीं हटता। क़िस्से-कहानी को छोड़ दें तो क्या तुमने ऐसे प्रेमी देखे हैं, जो दो पल का भी वियोग नहीं सह सकते। समझो कि भाग्य से वे मिल जायें और सब कुछ अनुकूल ही होता रहे तो भी अन्ततोगत्वा वे

दोनों अपनी सन्तान के वृद्धि-विकास में लग जाते हैं । अब मिलने पर एक दूसरे की बात नहीं करते बल्कि मुन्ने की बात करते हैं । प्रसिद्ध यौन वैज्ञानिक हॅवेलॉक एलिस ने अपनी पुस्तक - 'लिटिल एसेज़ ऑव वर्चू एन्ड लव' में उस दृष्टि को तर्क व संगत माना है, जो प्रेम का सुन्दरतम संस्कार सामाजिक रूप से मान्य व वांछित सन्तान की परवरिश ही समझते हैं। याने थोड़ा आगे बढ़ कर प्रेम की परिणति विवाह में सन्तोषजनक मानी गयी है और विवाह की परिणति संतान में। मज़ा यह कि हिन्दू शास्त्र और दूसरे धर्म-ग्रंथ भी पुत्र को इसलिए अतिशय काम्य समझते हैं, क्योंकि वह 'पुत' नामक नरक से रक्षा करता है । इस दृष्टि से पहले तो सन्तानहीन प्रेमियों या दम्पतियों का जीवन निष्फल या प्रेमरहित मानना पड़ेगा । और भी कुछ शास्त्र कहते हैं कि यौन-सम्बन्ध का एकमात्र लक्ष्य होना चाहिये संतानोत्पत्ति । याने शरीर के आकर्षण या काम के सबसे रमणीय अर्थ हैं - सन्तानोत्पत्ति । इस तथ्य को अगर तुम्हारा तर्क स्वीकार करने को तैयार है, तो कृपया आगे मत पढ़ो और इस पत्र को फाड़कर फेंक दो।

पहली बात तो इस तरह या तो प्रेम और विवाह को एक दूसरे का पर्याय मान लेना पड़ेगा और या विवाह के बाहर भी सन्तानोपत्ति को स्वीकार करना पड़ेगा। ठीक है, यदि ऐसा करना चाहो तो मुझे कोई उज्र नहीं है । ओस्वाल्ड श्वार्ज़ ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'द सायकॉलजी ऑव सेक्स ' में कहा है कि बिना शरीर-सम्बन्ध के प्रेम को सार्थक नहीं माना जा सकता । इसी बुनियाद पर पाश्चात्य संस्कृति आगे बढ़ी है । नतीजा क्या हुआ है कि अमेरिका में लड़कियों के होस्टेल में चौदह-पन्द्रह बरस की लड़कियां ही गर्भवती हो गयीं और मां बनने के बाद अनेक ज़िम्मेदारियां आने का प्रभाव उनकी पढ़ाई और विकास पर पड़ा । समाज में कुछ लोग उत्साह-पूर्वक यह आशा व्यक्त करने लगे कि स्त्री को यह स्वतंत्रता होनी ही चाहिये कि जिस पुरुष से वह प्रेम करती है उसके पुत्र को जन सके और उसका लालन-पालन कर सके । कम्यूनिस्ट देशों में यह जिम्मेदारी कि अवैध सन्तान कष्ट का शिकार न बन सके सरकार की है ।

स्वयं हमारे यहां के महानतम विचारकों में से एक महाराज भर्तृहरि ने कहा है कि यदि प्रेम न हो तो शरीर-सम्बन्ध शव-संगम है । ज़रूर हो सकता है मगर ईमानदारी से स्वीकार करें तो यह सत्य उजागर होगा कि 90 प्रतिशत या इससे कुछ अधिक ही सन्तानें शव - संगम का परिणाम हैं। शरीर उससे जिसका वह शरीर है इस क़दर स्वतंत्र है कि अत्यंत घृणापूर्वक किये हुए बलात्कार का परिणाम भी बहुत सुन्दर सन्तान हो सकती है । थोड़ा और विचार करें तो मानना पड़ेगा कि

मातृ- प्रेम और यह विचार कि 'माता न कुमाता, पुत्र कुपुत्र भले ही ' एक थोथी और झूठी धारणा है। क्या हर रोज सैंकड़ों कुमारी कन्याएं अकल्पनीय क्रूरता से अपने पैदा हुए बच्चों को तुरन्त ही गटर में नही फेंक देतीं या गले में कंकर डाल कर नहीं मार डालती ? इसके अलावा ठंडे दिल से सोचो कि क्या संसार के बहुत अधिक पुरुष अपनी पत्नियों पर बलात्कार नहीं करते और क्या इसका उलटा स्त्रियों द्वारा पुरुष पर भी बलात्कार को सुन्दर बनाने का प्रयत्न नहीं हुआ है। अच्छा यही हो सकता है कि अभी तक अपने द्वारा सोचे सब विचारों को एकदम छोड़कर हम ठंडे मन से विचार करें। इसको एक व्यवस्था का स्वरूप देने के लिए हिन्दुओं ने चार आश्रम बनाये जो सचमुच में हज़ारों साल तक बहुत काम आये। मगर, और यह बड़ा मगर है, मासिक धर्म के बाद कन्या का अविवाहित रहना एकदम नरक का खुला द्वार घोषित होने से हिन्दू समाज में स्त्रियों को दासी बनाने में देर नहीं लगी। पतिव्रता होना संसार में मुक्ति का खुला द्वार हो गया और बात बढ़ते-बढ़ते यहां तक पहुंची कि मिल्टन ने घोषित किया कि पुरुष भगवान को प्राप्त करे और स्त्री पुरुष के द्वारा ही भगवान को प्राप्त करे। सुन्दरदासजी जैसे महाकवि ने न सिर्फ श्रृंगार को घृणित बताया किन्तु भागवत के प्राण रास के पांच अध्यायों को विषयों का उद्दीपन और काम का प्रचार बताया। उन्हीं सुन्दरदासजी ने तन-मन-धन से पति की सेवा में ही संलग्न स्त्री को संसार की सबसे मुक्त और पहुंची आत्मा बताया। बात यहां तक पहुंची कि कोढ़ी पति की इच्छा को पूरी करने जब पतिव्रता स्त्री उसे वेश्या के यहां ले जा रही थी, तब अंधेरे में किसी को उन कोढ़ी महाशय का पाँव लगने पर शाप मिलता है कि जिसका पाँव मुझे लगा है वह सूर्योदय होते ही मर जायेगा। पतिव्रता शाप देती है - सूर्योदय नहीं होगा। क्या यह स्पष्ट नहीं है कि आज के युग में जब पुलिस विभाग में भी सबसे अच्छी सेवाएं किरन बेदी जैसी वीर तरुणियों ने की हैं, देश के सबसे बड़े जजों में नारियां भी हैं और यूनायटेट नेशन्स की प्रधान एक स्त्री तो थी ही संसार के कई देशों की प्रधान मंत्री और क्रांतिकारी नेत्रियां स्त्रियां बनी हैं, यह विचार बोदे और निरा पागलपन प्रतीत होते हैं। स्वामी दयानंद पंडिता रमाबाई से इसीलिए नाराज़ हो गये थे कि उन्होंने आजीवन ब्रह्मचर्य का पालन करने से इंकार कर दिया था।

लेक्चर ज़रूरी है। अगर तुम जो मन में आता है, वही करना चाहो और कुमारी मांओं के समाज में रहना चाहो या विवाह के पूर्व या विवाह के बाहर देह-सम्बन्ध को सुखद शांतिप्रद समझो, और निश्चय कर चुकी हो कि ऐसी नैतिक बकवास का स्वतंत्र प्रेम (पढ़ो यौन) से कुछ सम्बन्ध नहीं है, और यह बोरियत

सिर्फ लोगों की प्रेम में आस्था नष्ट करने का आयोजन है , या जो होगा देखा जायेगा, तो यह पत्र फाड़कर फेंक दो । आराम बड़ी चीज़ है मुंह छिपा कर सोइये ।

डी. एच. लोरिन्स और उनके भारतीय अनुयायियों का विश्वास नैसर्गिक जीवन में है, वे सभ्यता को लगभग एक शाप मानते हैं । तो चलो, पशुओं को लें। लॅमार्क नामक प्रसिद्ध वैज्ञानिक ने भी पशुओं को लिया है । बाद में विकासवाद के विकास में लॅमार्क के दर्शन का डार्विन ने बहुत उपयोग किया । जिन मछलियों में नर मछलियां बहुत कम होती हैं, उन में मादा मछलियाँ नर मछलियों को दाँत से पकड़ कर रखती हैं जब तक कि गर्भ न रह जाये । प्रचलित धारणा के विपरीत शेरनी शेर को आधा- आधा घंटे में कामोद्यत करती है, जब तक कि गर्भ न रह जाये । किसी अज्ञात विचित्र कारण से उसे जब गर्भ रह जाना निश्चित हो जाता है तब उस पर गुर्राती है, काटती है, और उसे पास नहीं आने देती । यदि बुद्धिवाद और विज्ञान को मानें तो पशु की नस्ल के विकास के लिए मादा जिस नर को सबसे सक्षम समझती है, उसको अपनी तरकीबों से फंसाकर उसके बच्चे की मां बनती है । फिर बच्चे के बड़ा करने में नर पशु का पूरा सहयोग तरकीब से उपलब्ध करती है । इस भयानक सत्य को, कि मादा नस्ल को बढ़ाने के लिए पुरुष को साधन बनाती है अनेक प्रकार से सुन्दर बनाया गया । अमेरिका के एक उपन्यास में तलाक़शुदा दम्पति की सन्तान अपनी मां के बदले अपने पिता को चुनती है । इग्लैण्ड में एक लड़के ने कोर्ट में नालिश की कि वह अपनी मां नहीं, अपने पिता के साथ रहना चाहता है । नीत्शे ने इस सिद्धान्त को यूं रखा कि औरत एक तीर है जो बिना धनुष के निष्क्रिय है । स्त्री जब किसी पुरुष को चुनती है तो केवल एक साधन चुनती है। शॉ ने इस सत्य को लेकर बताया कि संसार के अधिकांश बड़े कलाकारों का विवाहित जीवन दुखी क्यों था । प्राकृतिक शक्तियाँ ऐसी हैं कि नस्ल के विकास के लिए मादा स्वयं अपने को सर्वथा विनष्ट करने को उद्यत रहती है । तो फिर पुरुष की क्या बिसात है ! इसलिए कलाकार की पत्नी परिवार के, पुत्र के लिए कलाकार को निर्दयता से बलि कर देती है । कलाकार बिना समझे विद्रोह करता है - प्रेमचंद ने मरने के पहले अपनी पत्नी शिवरानी से इक़बाल किया कि उनका रिश्ता एक औरत से है । मार्क्स की अवैध सन्तान के बारे में जानने को तुम उनका चरित पढ़ने को स्वतंत्र हो । हॉल केन का एक प्रसिद्ध उपन्यास है जो डा. बाबासाहेब अम्बेडकर को, कहते हैं, बहुत प्रिय था । उसमें एक प्रेमी अपनी प्रेमिका को गर्भवती करके चला जाता है । जब लौट कर उसे मालूम होता है कि प्रेमिका को इस हादसे में मर जाना पड़ा तो शिकायत करता है । एक क्षण की अपनी दुर्बलता को न संभाल सके

तो दोष समाज का ! है कि नहीं ? यदि शरीर को न मानो और अध्यात्म को मानो तो प्रेम का अपना लिंग और योनि होती है। कामिनी के नाम से भी घबरानेवाले स्वयं रामकृष्ण परमहंस के वचनामृत को पढ़कर देख लो। यदि प्रेम उच्च कोटि का है तो शरीर के संयम द्वारा एक इंद्रियातीत संभोग होता है - अंगरेज़ी में जिसे (ई. एस. पी.) एक्स्ट्रा सेन्सरी परसेप्शन कहते हैं। यह हृदय शक्ति की उस षड्यंत्र पर विजय है जो प्रकृति ने केवल नस्ल के विकास के लिए किया है। प्रेम सच्चा है का संक्षिप्त में मतलब यह है कि रमण या रमणी का भेद लुप्त हो जाता है। स्त्री और पुरुष दोनों में से कोई भी भोग्य नहीं रहता। डा. कुमारस्वामी ने अपनी अंगरेज़ी पुस्तक 'डान्स आव शिवा' में उपलब्ध साहित्य के आधार पर इसे यों कहा कि जहां दो प्रेमी प्रत्येक प्रेमी में एक हो जाते हैं और वहां दोनों की एक होने कि अनुभूति चेतना के तीव्रतम क्षण में अनुभूत होती है।

प्रकृति निर्मम होकर सृष्टि के विकास में , जाति के विकास मे संलग्न है। उसके पास व्यक्ति के सुख-दुःख सोचने का समय नहीं। वृत्तियों के षड्यंत्र तभी सफल हो सकते हैं जब पशु से ऊपर उठ कर क्षणिक को अमर बनाने के लिए मनुष्य अपनी चिच्छक्ति को सक्रिय करे।

सुगंधा, स्त्री का यह एक अभिशाप है कि उसका सारा प्रेम, सारी ऊर्जा गर्भाशय से निःसृत होती है। इसीलिए जीवन के विशाल क्षेत्र में या तो वह अपने मातृत्व से विवश होती है और या मर्दानी बनने लगती है। एक समुदाय ऐसा भी हुआ अमेरिका में जिसने चोलियां जलायीं और एक किताब लिखी गयी 'फीमेल यूनक' याने 'हिंजड़ा स्त्री '।

प्रेम के बिना मुक्ति नहीं और पैदाइशी बन्धन शरीर है। शरीर की सीमाएं मालूम नहीं पड़तीं। याने शरीर में ही सिमटते जाने से आदमी केंचुआ बन जाता है। स्त्री और पुरुष का द्वैत शुद्ध प्रेम में सबसे बड़ा अपराध है। मांसल नितम्ब और पुष्ट उरोज केवल सौन्दर्यपूर्ण अवयव ही नहीं हैं। वे गर्भवती स्त्री में गर्भस्थ शिशु को पौष्टिक आहार के उद्गम स्थान हैं।

मैं खोल कर कुछ नहीं कहूंगा। एक तो यह भी निश्चित नहीं कि तुम इस पत्र को पूरा पढ़ोगी भी कि नहीं और दूसरे यदि अब तक तुम्हें अनुभव नहीं हुआ होगा तो निश्चित ही ये बातें तुम्हें असह्य खुराफ़ात लगेंगी।

गुस्से से होंठ मत चबाओ। मेरी दृष्टि में तुम निश्चित ही संसार की सबसे सुन्दर स्त्री होगी दूसरे यह बात शायद ही देख पायेंगे। भला, कौन अभागा ऐसा होगा कि तुम्हारी जैसी स्त्री का सहवास पाकर अपने को स्वर्ग का स्वामी न समझे।

किन्तु तुम्हें देखते रहने के सुख से बड़ा सुख तुम्हें जल्दी-जल्दी में टॅक्सी में सूतिकागृह ले जाने का सुख निश्चित ही नहीं है। तुमने जीवन में दो - तीन बार तो प्यार किया होगा। निश्चित ! बचपन मे मैं एक सफल प्रेमी समझे जानेवाले व्यक्ति से पूछने गया - "जीवन में कितनी बार प्यार किया जा सकता है ?" उसने निश्चिंत होकर कहा - "एक व्यक्ति से एक समय में !" मैं समझ गया कि श्रीमान जिसे प्रेम समझते है वह केवल एक देह विशेष से आसक्ति है।

चण्डिदास का गीत है कि जब प्रेम आता है तब घर-छत-दीवार , हवा-रोशनी-पानी सब प्रेम का हो जाता है। इस अनुभव में अधिक व्यक्तियों को विश्वास नहीं हो सकता।

व्यक्तित्व के अनुसार प्रेम की अभिव्यक्ति अलग-अलग स्वरूप धारण करती है। मगर जिस प्रेम के बारे में कहा है कि -

कैतवरहितं प्रेम न भवति मानुषे लोके
यदि भवति, कस्य विरहो विरह सत्यपि को जीवति ?

समझी न हो तो अनुवाद भी सुन लो कि मनुष्यों के इस लोक में पहिले तो निष्कपट प्रेम होता ही नहीं; और होता भी है तो फिर विरह नहीं होता और विरह यदि हो भी जाय तो फिर प्रेमी के जीवन का अन्त निश्चित है।

वह प्रेम क्या केवल प्रमाद में की हुई एक कल्पना है ? गोस्वामी तुलसीदासजी ने भी बड़े जोर से दावा किया है कि जिसका जिस पर 'सत्य स्नेह' होता है, वह उससे अवश्य मिलता है। तो क्या वह भी प्रमाद में बात कर रहे हैं ?

तुम मुझसे बहुत नाराज़ होगी। लौकिक दृष्टि से तुम्हें मुझमें परिवर्तन दिखायी दिया। असल बात यह है कि शरीर से ऊपर उठकर तुम मेरा प्रेम संभाल नहीं पा रही थीं। तुम्हारे स्नायुओं में तो अतिशय तनाव आता ही जा रहा था, मगर पारिवारिक और सामाजिक विरोध की आँधियों में हम ऐसे सूखे नीरस झाड़ , झंखाड़, पत्तों और लताओं में उलझने लगे थे कि जो प्रेम के नाशक थे। तुममें निराशा और क्रोध उत्पन्न होने लगा था। और तब तुम्हें चाहनेवाले प्रेमी जो अभी तक असहाय थे, आगे बढ़े और तुम्हें झपट कर चले गये। जिस मौक़े की तलाश उन्हें थी, वह मौक़ा उन्हें मिल गया था। तुम्हें मैंने बहुत पुकारा – सुगंधा, सुगंधा, मत जाओ इन लोगों के साथ, ये तुम्हारे प्रेमी नहीं, तुम्हारे लोभी है। मगर जितना अधिक व्यथित होकर मैं चिल्लाता, उतनी ही तीव्रता से तुम उन लोगों के साथ इस बिना पर बढ़ती जा रही थीं कि मैंने तुम्हें धोखा दिया है। यह सोचकर वो लोग हंसते होंगे कि बिचारा फिलॅासफ़र इश्क पर भाषण झाड़ सकता है , पर बिचारा इश्क करने को और इश्क

पर भाषण देने पर को दो अलग चीज़ें मान गया होगा अभी तक ।

सुगंधा, मुझे अपने प्रेम पर विश्वास है क्योंकि मुझे ईश्वर पर विश्वास है। तुम्हारे शरीर का, मन का या देह का स्वामी नहीं बनना चाहता था । एक बार तुम मुझे आश्वास पारिमू नाम के अपने एक मित्र के यहां ले गयी थीं क्योंकि तुम्हें उसकी लड़की की सालगिरह पर उसके लिए खिलौने और कपड़े ले जाने थे। कितना अपमान किया था उसने मेरा ! मैं प्रतिवाद नहीं कर सकता था, क्योंकि न तो उसने मुझे बुलाया ही था और न मैं उसे जानता ही था । उसका यह अकारण क्रोध मेरी समझ में आता था, क्योंकि वह मुझे अपना रक़ीब समझता था । तटस्थ भाव से मैं यह सोचता रहा कि यदि मेरा अधिक से अधिक प्रिय तुम्हारा अपमान करता, तो मैं उसका कितना बुरा हाल करता ! मगर तुममें और मुझमें जो अंतर है उसे स्वीकार करने के बाद फिर कोई तकलीफ़ नहीं हुई । मैंने इस विचार से अपने को हर्षित किया कि तुम मेरे साथ इतना अधिक रहना चाहती थीं, कि अकेले उसके यहाँ जाने से तुम उतनी देर तक मुझसे दूर रहना स्वीकार नहीं कर सकती थीं । यह सोचकर मेरा प्यार तुम्हारे लिए इतना बढ़ गया कि मुझे बचपन में सुना एक गाना याद आ गया - ''सितमगर, तेरे लिए मैंने मेजर के बूट सहे । ''

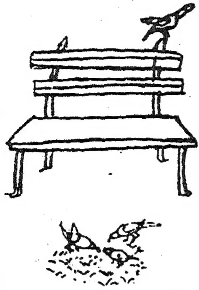
मैं तुमसे मिलने को बिलकुल व्यग्र नहीं, क्योंकि यदि तुमने मेरे प्रेम को अभी तक समझ लिया होगा तो पाया होगा कि मैं सदा तुम्हारे पास हूँ। कभी जीवन में मुझे तनिक-सा भी याद करके देखना मैं सदेह प्रत्यक्ष हो जाऊंगा । और मैं तुम्हें प्रत्यक्ष देखता हूं । मेरी बात के अनुमोदन में तुम्हारा मुस्कुराते हुए सिर हिलाना - नियत समय पर मुझसे मिलने के लिए जल्दी-जल्दी कदमों से तुम्हारा दूर से आते हुए दिखना मेरे जीवन के अविस्मरणीय दृश्य हैं ।

और हां, कल एक बात हुई । ज़्यादा तो मिलने पर ही बता सकूंगा, पर मैं तीन बजे तुम्हारे पास आया था । देखकर इत्मीनान हुआ कि तुम मेरी प्रतीक्षा ही कर रही थीं । ग्रीक पुराणों में एन्डीमियन से मिलने देवी डायना आती थी । क्यूपिड भी साइकी से मिलने हर रात आता था । हमारे वैज्ञानिक न केवल ग्रीक पुराणों को बल्कि अपने पुराणों को भी खुराफ़ात समझते हैं । क्या कल मैं तीन बजे रात को तुम्हारे साथ नहीं था ? यह केवल इसलिए संभव है कि ईश्वर हमारे प्रेम का अनुमोदन करते हैं । क्या अभी भी तुम्हें बहुत गुस्सा आता है मेरे लेक्चर पर । पत्र का उत्तर मत देना । श्री गुरुदेव की कृपा रही ,तो वसन्त पंचमी को मैं फिर आऊंगा गो समय नहीं बता सकता ।

प्रभु-कृपा में तुम्हारा सहभोक्ता

नृत्यानन्द

राजपूत की मृत्यु



सुमेरसिंह चितौड़गढ़ की कम्यूनिस्ट पार्टी में था, जब अगस्त में कॉमरेड रणदिवे ने उसे सॉफ्ट लाइनर कहकर निकलवा दिया। पार्टी के जिन कॉमरेडों पर जोशी की लाइन अपनाने का आरोप था, उनमें सुमेरसिंह भी एक था। जब वह बम्बई के स्कूल ऑफ आर्ट में कमर्श्यल आर्ट का टीचर बनकर आया, तो लड़कों को बड़ा अजीब लगता था। विन्सेन्ट तो सबसे हँसकर यही कहता था– ''भोला है। बम्बई की हवा लगी तो आदमी बन जायेगा।'' सिक्ख लड़की मिस नॉल ने उसके पास जाकर कहा– ''सर, मैं फोर्थ यिअर में हूँ। मेरे साथ बहुत मेहनत करनी पड़ेगी!'' सुमेरसिंह कुरसी पर से खड़ा होकर बोला– ''यस, यस ! यह तो मेरी ड्यूटी ही है !''

मिस नॉल सोश्यल गॅदरिंग में जपजी का पाठ सस्वर करती थी और गुरु गोविंदसिंह के जन्मदिन पर तो गुरुद्वारों में कई बूढ़े लोग उसके आते ही खड़े हो जाते थे। नया होने के कारण बम्बई में मिस नॉल ने सुमेरसिंह की बहुत मदद की। मिस नॉल अकेली बम्बई में रहती थी। उसके पिता सरदार मेहताबसिंह गढोक का तबादला गंगानगर हो गया, तब डिप्लोमा लेने को मिस नॉल के दो साल बाकी थे। उस बड़े मकान में मिस नॉल अकेली रहती थी। सामने ही दूसरा फ्लॅट था। असल में मकान तो एक ही था और दोनों मकानों मे जाने का दरवाज़ा भी एक था, मगर किराया ज़्यादा होने के कारण उसमें दो परिवार रहते थे। एक में तो मेहताबसिंह का परिवार और सामनेवाले दूसरे फ्लॅट में मोहनलाल बागड़ी का परिवार। मोहनलाल सीप के खिलौने एक्सपोर्ट करते थे। उनके यहां जयसिंह देवड़ा नाम का एक आदमी सरदारशहर से हर साल आकर खिलौने ले जाता था। पिछले दो साल से वह बीमार था और उसका बड़ा लड़का अगरमल आया करता था, जिससे मिस नॉल की अच्छी पहचान इसलिए हो गयी थी, क्योंकि अगरमल का छोटा भाई भरत कमर्श्यल आर्ट का कोर्स करना चहता था और मिस नॉल भी वही कार्स कर रही थी।

सन 1971 में जब जयसिंह आया, तो अपने छोटे भाई भरत को भी ले आया। उसने कोर्स ज्वाइन कर लिया और वह मिस नॉल के ही साथ रहने लगा। सन्डे को भरत अपने दोस्तों को खाना खाने को मिस नॉल के यहाँ इनवाइट तक करता था और मिस नॉल की पाककला और खुशमिज़ाजी सारे स्कूल ऑफ आर्ट में मशहूर

हो गयी। जब सुमेरसिंह ने बतौर टीचर के स्कूल ज्वाइन किया, तब मिस नॉल के निकट आया। उसे लगा मिस नॉल भरत का बहुत लाड़ करती है और उसने जब मिस नॉल को बताया तो वह बोली– "मेरे घर पर रहता है और मुझसे इतना छोटा है तो क्या यह नॅचुरल नहीं ?" सुमेरसिंह हँसकर बोला–"छोटा तो इतना नहीं! ज़्यादा से ज़्यादा दो–तीन साल छोटा होगा!" मिस नॉल बोली– "इनोसेंट इतना है! क्या बताऊँ !"

उसके एक साल बाद मिस नॉल की शादी सुमेरसिंह से हो गयी। अजीब बात यह हुई की शादी के एक दिन पहले मिस नॉल ने रोते–रोते भरत को अपने घर से आधी रात को निकाल दिया। सब लोगों को बहुत तआज़ुब हुआ कि न झगड़ा न टंटा; न बहस, न मुबाहसा एकाएक क्या हुआ।

असल बात क्या थी किसी को मालूम न हुआ, मगर बागड़ी परिवार की इकलौती लड़की रानी का कहना था कि सुमेरसिंह और मिस नॉल में भयंकर झगड़े होते थे जो रात-रात भर चलते थे और मार्के की बात यह थी कि न सिर्फ़ मिस नॉल ही रोती थी, मगर सुमेरसिंह जैसा कड़ियल जवान भी बुक्की फाड़कर रोता था। ऐसा लगता था कि भरत एक पेंटिंग छोड़ गया था हीर-रांझा की और वह मिस नॉल को बहुत पसन्द थी। उसे रोज़ झाड़ना-पोंछना मिस नॉल के लिए जरूरी था। न सिर्फ़ यह, मगर उसे झाड़ते–पोंछते मिस नॉल एक गाना गाया करती थी जो भरत का खास गाना था और जिसे मिस नॉल बहुत आग्रह से भरत से गवाया करती–"मिलो न तुम तो हम घबरायें....."

रानी ने रात को उनका झगड़ा कान लगाकर सुना। सुमेरसिंह रोते-रोते कह रहा था – "जिसने तुम्हें रेप किया नींद की गफ़लत की हालत में और जिसे तुम अपने कमरे में इनोसेंट समझ कर सुलाती थी, उसकी बनायी तस्वीर की कितनी हिफ़ाज़त करती हो तुम ! और यहाँ तक कि वही गाना जो उसे इतना पसन्द था और जिसे आग्रह करके तुम गवाया करती थीं, तुम वही गाना गाती रहती हो हरदम....."

रानी ने सुना गुस्से में मिस नॉल कह रही है – "चित्तौड़गढ़ के राजपूत से शादी की है तो भरत को किरपान भोंक दूँ ? तुम्हारे इसरार करने पर निकाल तो दिया उसे घर से ! अब क्यों मैं भी छत पर से कूद जाऊँ ? यह जानते हुए भी तुमने क्यों की मुझसे शादी ? अब मेरे जीवन को नरक बना दिया। तुम्हारे आयडियाज़ यह हैं कि किसी से एक बार छोटी-सी गलती हो गयी, तो वह इंसान ही न रहा। मुझे यह सब तुम्हें बताना ही न चाहिये था, पर भरत ने धमकी देनी शुरू कर दी

था कि वह सब तुम्हें बता देगा ! मैं इतनी खालिस नफ़रत किसी इंसान क्या किसी प्राणी से भी नहीं कर सकती ! तुम्हारा तो मिजाज़ ही ऐसा है कि प्यार करने लगो तो प्यार की इन्तिहा कर दोगे और नफ़रत करने लगो तो जान लिये बिना न छोड़ोगे। तुम्हारे साथ रहकर तो कोई भी औरत पागल हो जायेगी। तुमने ही तो बताया था कि इन्दौर में पड़ोस की मिस मारफ़तिया के साथ तुम रेसिडेन्सी बाग़ में जामुन तोड़ने जाते थे और एक दिन अंधेरा हो जाने पर उसी पेड़ के नीचे तुमने उसे एमब्रेस करके तीन बार किस किया था। फिर अलबम में इतना बड़ा फोटोग्राफ उसका लगाये रखते हो ! मैंने तो कभी ऑबजेक्ट नहीं किया ! तुमसे शादी करने से अच्छा था कि मैं ज़हर खा लेती !''

रानी बता रही थी कि मिस नॉल हँसते-हँसते सामने से निकली – ''आप तो ईद के चाँद हो गये हैं ! दारजी थे को कितना आते थे ! उनके जाने के बाद झांका भी नहीं इधर !''

शाम को आने का वायदा कराके ही मिस नॉल ने मुझे छोड़ा।

शाम को पहुँचा तो सात बज गये थे। भीड़ जमा थी। सुमेरसिंह ने खुदकुशी कर ली थी और उसकी सफ़ेद कपड़े से ढकी लाश आंगन में रखी थी।

मिस नॉल ने एक हूक मारी– ''यह क्या हुआ ? बताइये आप तो लेखक हैं !''